संभव

जुलाई–दिसम्बर 2020

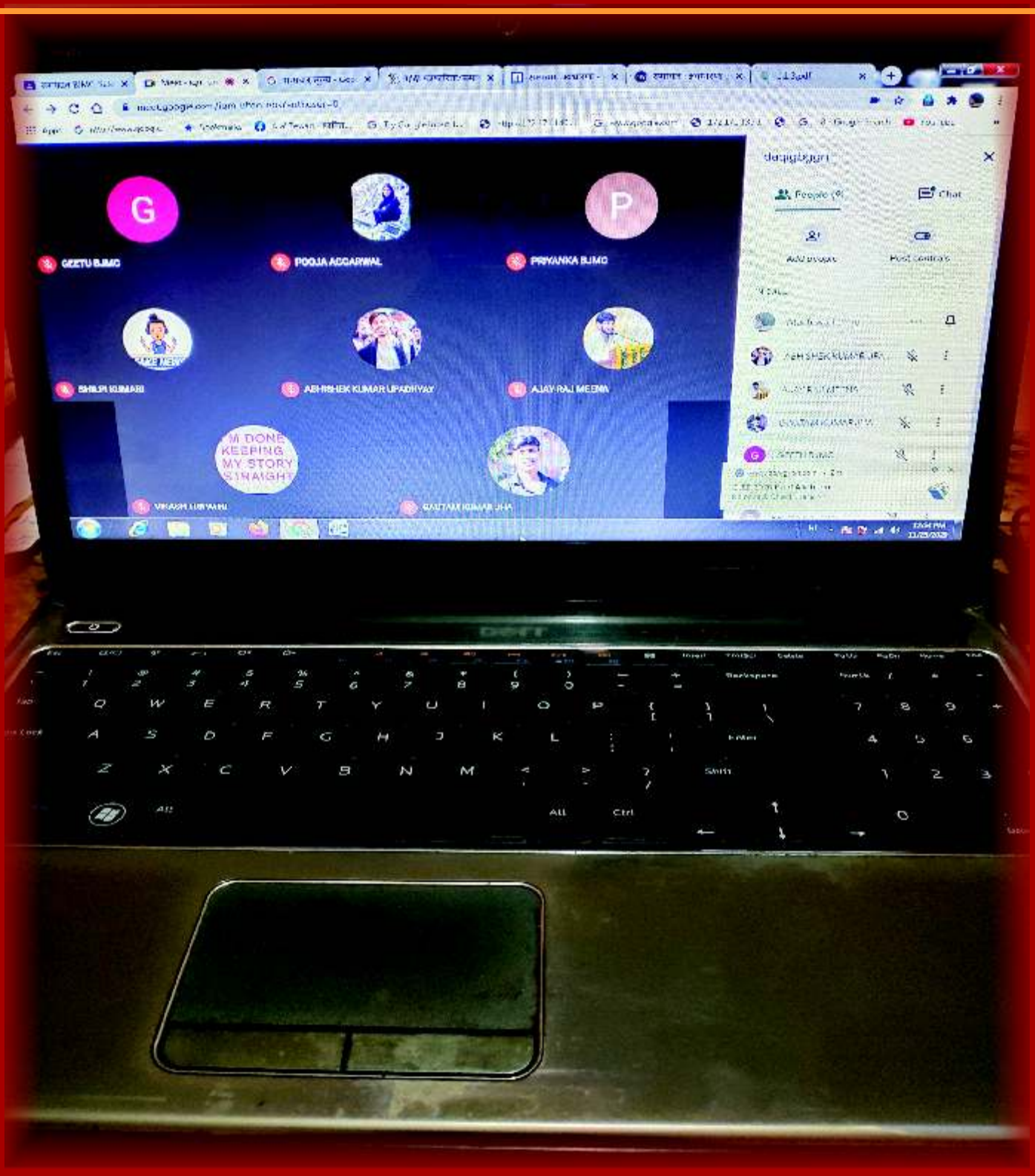

हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, रामलाल आनंद महाविद्यालय

एक लंबी दौड़, लेकिन सब हार गए

● **धनंजय कुमार**

यह एक लंबी दौड़ है
अनगिनत वर्षों पुरानी
हारना सीखा नहीं था
अब तक मनुष्य कभी
इस कदर चीखा नहीं था
अभी तक एक होड़ थी जिसमें
सागर की गहराई नाप चुके
चांद का मौसम तक भांप चुके
दुनिया को एक ग्राम बनाकर
सातों टापू टाप चुके
किसी की धरती में हीरा मिला
किसी की धरती में तेल
कोई लोहा लेकर इतराए
तो कोई सबसे तीव्र रेल
किसी के हिस्से में बस कंगाली
कोई लगाए हथियारों की सेल
कोई महाशक्ति बन बैठा
तो कहीं जारी है कूटनीतिक खेल
पर क्या करोगे इस भेद-विभेद का
इस लंबी दौड़ में अब कौन आगे खड़ा है
अगर सबसे जीत भी गया तू
तो क्या हार का कोई उपचार पड़ा है
अब ये अनवरत दौड़ थम गई
अदृश्य के इस विकट दृश्य से
मानों मनुज की सांसें थम गई
उस प्रगति का प्रताप इतना विकराल होगा
सोचा न था कि चहुं ओर काल होगा
इस लंबी दौड़ में कोई जीते या हारे
पर नतीजे से बड़ा एक सवाल होगा
क्या यह दौड़ फिर शुरू होगी
क्या फिर से यही हाल होगा।

अनुक्रमणिका

संपादकीय

कोरोना के अनुभव वाया मीडिया	**राकेश कुमार**	1

लेख

कोरोना ने आर्थिक तंत्र को कमजोर कर दिया	**प्रवेश चौहान**	2
कोरोना काल ने मजदूरों को किया परेशान	**कमलेश**	4
लॉकडाउन में मनुष्य कैद, पर प्रकृति आजाद	**निक्की**	6
ऑनलाइन शिक्षा की मजबूरी, कोरोना के लिए जरूरी	**भारती**	7
काशी की नागरी नाटक मंडली	**विकास त्रिपाठी**	8
अपना पूरा दिन कहां खर्च करते हैं भारतीय	**मानसी बिष्ट**	10
दिल्ली स्ट्रीट फूड यानी असली खाना खजाना	**गीतू**	11
खेलों के माध्यम से विरोध करना जरूरी	**अभिषेक कुमार**	12
सुनहरे सपने और आशंकाओं के बीच नए कृषि कानून	**जागृति रावत**	14
समय की मांग है इलेक्ट्रिक वाहनों को बढ़ावा देना	**पूजा अग्रवाल**	16
रेप एक अमानवीय अपराध	**वसुंधरा बाथम**	18
तुम बिन जिया जाए कैसे	**विद्या शर्मा**	20
संगीत : नए का जमाना, पर पुराना तो पुराना है	**गौतम कुमार झा**	22

नाटक

थिरकते पांव	**श्रुति गोयल**	24

कविता

एक लंबी दौड़, लेकिन सब हार गए	**धनंजय कुमार**	फ्रंट इनर
प्रतीक्षा	**विद्या शर्मा**	23
मुस्कुराती औरतें	**दीपशिखा**	बैक पेज
चांद की चमक	**गीतू**	बैक पेज

पुस्तक समीक्षा

जिंदगी के फलसफे की व्याख्या करता 'अक्टूबर जंक्शन'	**शिल्पी**	28

संभव

वर्ष : 14 अंक : 2
पूर्णांक–17
जुलाई–दिसम्बर 2020
दिसम्बर 2020 में प्रकाशित

संरक्षक मंडल

प्राचार्य
डॉ. राकेश कुमार गुप्ता

प्रभारी
डॉ. सुभाष चन्द्र डबास

संपादक मंडल

संपादक
डॉ. राकेश कुमार
डॉ. अटल तिवारी

छात्र संपादक
विकास कुमार

सह-संपादक
वसुंधरा बाथम

उप-संपादक
विद्या शर्मा, गीतू

फोटो
डॉ. अटल तिवारी, गीतू,
शिल्पी और इंटरनेट

संपादकीय पता :
हिंदी, हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
रामलाल आनंद महाविद्यालय,
(दिल्ली विश्वविद्यालय)
बेनितो जुआरेज़ मार्ग, नई दिल्ली–110021
दूरभाष: 011–24112557
ईमेल : sambhavrla@gmail.com

स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक
डॉ. राकेश कुमार गुप्ता
द्वारा बेनितो जुआरेज मार्ग
नई दिल्ली–110021 से प्रकाशित
और **यशस्वी प्रिंटर्स,** जी–2/122,
द्वितीय तल, सेक्टर–16, दिल्ली–110089
से मुद्रित

'संभव' में प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं, उनसे संपादक मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

संपादकीय

कोरोना के अनुभव वाया मीडिया

पिछले कुछ समय में हमने जिस तरह से दुनिया को बदलते देखा है वह सब हमारी पीढ़ी के लिए अनोखा और अनजाना था। हम एक ऐसे शत्रु के सामने खड़े थे जिसकी न शक्ल हमें पता थी, न सूरत और न ही उसकी सीरत की पहचान थी। इसलिए यह लाज़िमी था कि जिस अनोखे अनजाने वायरस से लड़ने के लिए हमारे पास कोई अस्त्र-शस्त्र उपलब्ध नहीं थे उससे हम भयभीत हो जाएं। यह अनजाना शत्रु था कोराना वायरस या फिर कोविड-19।

इस वायरस ने दुनिया की बड़ी से बड़ी सत्ता को घुटनों पर ला दिया। इस दौरान करोड़ों लोग बीमार और लाखों लोग मृत्यु को प्राप्त हुए। मानव इतिहास के इस भयावह दौर ने कुछ सिखाया हो या न सिखाया हो पर एक सीख अवश्य दी है कि हम इस वायरस से अकेले नहीं लड़ सकते। इसके लिए हम सभी को संगठित होकर संघर्ष करना होगा। डॉक्टर, नर्स, स्वास्थ्य कर्मी, पुलिस, शिक्षक, व्यापारी वर्ग सभी को एक साथ आकर इससे लड़ना होगा। इस पूरी आपदा ने हमें आईना भी दिखाया कि हमें अपने विकास की प्राथमिकताएं बदलनी होंगी।

अभी तक विकास को मात्र समाज की आर्थिक तरक्की के साथ जोड़कर देखा जाता रहा है। यह देखा जाता है कि किसी देश की परकैपिटा आय कितनी है परंतु यह बात साबित हो गई कि देश और दुनिया की चिकित्सा सुविधाएं कितनी अपर्याप्त हैं। हमारे अर्थतंत्र की कमज़ोरियां भी सामने आईं कि मज़दूर या असंगठित क्षेत्र के अन्य कामगार बीमारी और बेरोज़गारी के बीच झूल रहे थे। इससे मजबूर होकर लाखों मज़दूरों ने शहरों को छोड़कर वापस गांव लौटने का रास्ता चुना। मध्य वर्ग वैसे तो अपने में ही डूबा रहने वाला वर्ग माना जाता है पर कोरोना से उपजी आर्थिक परिस्थितियों का दबाव उन्होंने भी अनुभव किया।

इस दौरान लॉकडाउन, इम्युनिटी, पीपीई, आइसोलेशन, क्वारंटीन जैसे अनेक शब्द हमारी भाषाओं में शामिल हुए। शिक्षा के क्षेत्र में इस समय में अनेक बदलाव आए। लगा कि जैसे सब कुछ ऑनलाइन ही है–जैसे ऑनलाइन शिक्षण, ऑनलाइन परीक्षा, ऑनलाइन वेबिनार, ऑनलाइन विदाई समारोह, ऑनलाइन कवि गोष्ठी, ऑनलाइन प्रशिक्षण, ऑनलाइन बैठक। इस ऑनलाइन की अधिकता ने लोगों को घर से काम करने की सुविधा तो दी पर मशीनों से बात करने का भयावह एकाकी करने वाला अनुभव भी दिया।

ऑनलाइन की अधिकता से लोग इतना उकता गए कि ऑफलाइन आने के लिए बेचैन परेशान घूमने लगे। तो कुल मिलाकर संभव का यह अंक इसी जद्दोजहद का परिणाम है कि हम जल्द से जल्द आफ़लाइन प्रिंट में पत्रिका निकालना चाहते थे। तो यह लीजिए अंक आपके सामने है। आशा है यह अंक संभव के पिछले अंकों की भांति आपको अच्छा लगेगा।

डॉ. राकेश कुमार
संयोजक, हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार

कोरोना ने आर्थिक तंत्र को कमजोर किया

● **प्रवेश चौहान**

कभी किसी ने सपने में भी नहीं सोचा होगा एक वायरस की वजह से स्कूल और ऑफिस जाना तो दूर की बात रही घर से निकलने में भी डर लगने लगेगा और अपने ही घर की चारदीवारी में कैद होकर रहना पड़ेगा। आज वह खौफनाक मंजर सामने आ ही गया है। प्रकृति ने इस बात को भी समझा दिया प्रकृति के सामने विज्ञान कुछ भी नहीं है।

चीन के वुहान शहर से फैले कोरोना नामक वायरस ने पूरी दुनिया को अपनी चपेट में ले लिया है। कोई भी देश इस वायरस से अछूता नहीं बचा है। वायरस से बचने के लिए तमाम देशों की सरकारों के पास अगर विकल्प इस समय बचा है तो वह है लॉकडाउन। अब जाहिर सी बात है अगर देश में पूर्ण रूप से बंदी रहेगी तो सभी कामकाज ठप होंगे। कामकाज ठप होंगे तो पैसा कहां से आएगा और अगर पैसा नहीं आएगा तो सभी देशों की अर्थव्यवस्था का पहिया तो अपने आप ही थम जाएगा।

भारत की बात की जाए तो अगर पूरी दुनिया में किसी देश में अधिक समय तक लॉकडाउन लगा तो वह भारत में ही लगा। भारत वैसे तो लॉकडाउन से पहले से ही बुरी आर्थिक स्थिति से गुजर रहा था, लेकिन लॉकडाउन ने भुखमरी, गरीबी, बेरोजगारी, लगातार गिरती अर्थव्यवस्था आदि इन सभी बातों को भुला ही दिया। अब सरकार से इन सभी बिन्दुओं पर सवाल पूछने का मतलब जवाब नहीं मिल रहा है।

कोविड-19 संकट आने के पहले भारतीय अर्थव्यवस्था नॉमिनल जीडीपी के आधार पर 45 साल के न्यूनतम स्तर पर थी। रियल जीडीपी के आधार पर 11 साल के न्यूनतम स्तर पर थी। बेरोजगारी की दर पिछले 45 साल में सबसे अधिक थी और ग्रामीण मांग पिछले 40 साल के सबसे न्यूनतम स्तर पर थी। इसलिए बेहतर यह होगा कि जारी आर्थिक संकट को समझने के लिए पिछले दो वर्ष से चल रहे आर्थिक संकट को भी संज्ञान में लिया जाए। तब जाकर कहीं कोविड-19 संकट के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था को दोबारा तेजी से आगे बढ़ाने के लिए एक मजबूत नीति का निर्माण हो सकता है।

वर्तमान समय की बात करें तो भारतीय अर्थव्यवस्था एक गहरे संकट की तरफ बढ़ रही है। विभिन्न प्रतिष्ठित अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं ने भारत की आर्थिक वृद्धि दर के संदर्भ में जो आंकलन जारी किए हैं, वे चिंताजनक हैं। भारत के परिप्रेक्ष्य से बात करें तो सेंटर फॉर मानीटरिंग इंडियन इकॉनामी (सीएमआईई) के जारी आंकड़ों के अनुसार लॉकडाउन की वजह से कुल 12 करोड़ नौकरियां चली गई हैं। कोरोना संकट से पहले भारत में कुल रोजगार आबादी की संख्या 40.4 करोड़ थी, जो इस संकट के बाद घटकर 28.5

करोड़ हो चुकी है।

कोरोना संकट की वजह से जीडीपी में गिरावट की आशंका कई विश्लेषकों ने जताई थी। हालांकि, अर्थव्यवस्था की हालत पहले से ही संकटग्रस्त थी, लेकिन कोरोना वायरस के संक्रमण को रोकने के लिए लगाया गया देशव्यापी लॉकडाउन और विनाशकारी साबित हुआ। कोरोना वायरस से निपटने के लिए लगाए गए लॉकडाउन की वजह से मांग और निवेश में भारी कमी आई। भारत ने साल 1996 से हर तीन महीने पर जीडीपी का डाटा जारी करना शुरू किया था। उसके बाद से यह अब तक की सबसे बुरी स्थिति है।

भारत दुनिया की छठवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का सपना है कि भारतीय अर्थव्यवस्था का आकार पांच ट्रिलियन डॉलर का हो जाए। हालांकि, पहली तिमाही के आंकड़े काफी निराश करने वाले हैं। अप्रैल–जून तिमाही में भारत की जीडीपी में 23.9 फीसदी की रिकॉर्ड गिरावट आई है। अभी भारत को माइनस 24 से शून्य तक आने में ही लंबा वक्त लग सकता है। उसके बाद शून्य से ऊपर उठना भी आसान नहीं होगा।

भारत की लगातार गिरती अर्थव्यवस्था और कमजोर होते आर्थिक तंत्र को दोष देने की बजाय देश की सरकार पर सवाल खड़े किए जाएं तो ज्यादा अच्छा होगा। जब दुनिया के तमाम देशों में कोरोना वायरस से संक्रमित मरीजों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही थी और उस समय भारत में कोरोना के मरीज बिल्कुल भी नहीं थे। जनवरी 2020 की बात की जाए तो सरकार को जनवरी से ही अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर विदेशों से आने वाले लोगों की जांच करनी चाहिए थी। मगर सरकार ने इसकी तरफ कोई ऐसा ठोस कदम नहीं उठाया।

आप ऐसा भी कह सकते हैं कि कोरोना वायरस और लॉकडाउन ने सरकार की उन नाकामियों को छुपा दिया है जिसे वह छुपाने के लिए कोई न कोई रास्ता ढूंढ रही थी। नाकामियों को छुपाने के लिए जो रास्ता मिला, वह था कोरोनावायरस को आगे रखकर लॉकडाउन लगाना। साधारण सी बात थी लॉकडाउन के बाद कोई कैसे सरकार से सवाल पूछ सकता है। वैसे तो सरकार से किसी तरह का सवाल पहले भी किसी में पूछने की हिम्मत नहीं थी और अब लॉकडाउन और कोरोना की वजह से कोई सवाल पूछने का साहस नहीं कर सकता।

मार्च के चौथे हफ्ते में सरकार ने जब लॉकडाउन लगाया तब 500 के आसपास भारत में कोरोना के संक्रमित मरीजों की संख्या थी। यहां पर सरकार की इस चतुराई को ध्यान से समझने में आसानी होगी। इस वक्त भारत में लगभग 50,000 से 1 लाख तक कोरोना वायरस से संक्रमित मरीज आते हैं और अब सभी पाबंदियों पर बंदिशें खत्म कर दी गई हैं। अगर सरकार चाहती तो लॉकडाउन पहले से ही न लगाती और आज भारत की अर्थव्यवस्था माइनस 24 तक नहीं पहुंचती। कई करोड़ नौकरियां नहीं खत्म होती। कोरोना और सरकार ने मिलकर देश के आर्थिक तंत्र को बिल्कुल धराशायी कर दिया है, जिसे सुधारने में कई साल लग सकते हैं।

कोरोना काल ने मजदूरों को किया परेशान

● **कमलेश**

वह दर-दर जाकर भटकता है। ठोकरें खाता है। फिर कहीं जाकर दो वक्त की रोटी उसके नसीब में आती है। जी हां, दोस्तों यह दशा है भारत में रहने वाले उन तमाम लाखों प्रवासी मजदूरों की, जो काम की तलाश में अपने घरों, अपने गांवों व परिवार को छोड़कर बड़े-बड़े शहरों में काम की तलाश में निकलते हैं। वह इन बड़े-बड़े शहरों में आपको विभिन्न फैक्ट्रियों में विभिन्न निर्माण कार्यों में रेहड़ी पटरी और ठेला लगाने वाले या फिर फेरी वालों के रूप में नजर आ जाते होंगे। हालांकि हर शहर में कहीं न कहीं जरूर एक ऐसा स्थान भी होता होगा जो कि लेबर चौक के नाम से मशहूर होता है, जहां पर अधिकतर प्रवासी मजदूर होते हैं। जिन्हें दिहाड़ी मजदूर कहा जाता है। उनके पास कोई रोजगार नहीं होता। वह रोजाना कमाते हैं और उसी से अपना जीवन यापन करते हैं। इन मजदूरों में कई ऐसे भी होते हैं जिनके पास कोई रहने का ठिकाना भी नहीं होता। वह वहीं आसपास सड़कों पर या फिर विभिन्न झुग्गियों-बस्तियों में अपनी जिंदगी गुजारते हैं। इन मजदूरों की आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय होती है कि इनके पास कभी-कभी खाने तक के पैसे नहीं होते। हालांकि फैक्ट्रियों व विभिन्न निर्माण कार्यों में ईंट के भट्ठों में काम करने वाले प्रवासी मजदूर कुछ हद तक ठीक रहते हैं क्योंकि भारत में ज्यादातर प्रवासी मजदूर ग्रामीण क्षेत्रों से आते हैं। वे पढ़े लिखे नहीं होते, इस कारण से उन्हें मजदूरी करनी पड़ती है और पैसे कमाने पड़ते हैं।

भारत में जब कोरोना महामारी का आगमन हुआ तो यह महामारी बड़ी तेजी से फैलने लगी। मौजूदा केंद्र सरकार व विभिन्न राज्य सरकारों ने इस बीमारी से बचने के लिए अपने-अपने राज्यों में लॉकडाउन की घोषणा कर दी, जिसके कारण भारत में सभी प्रकार की गतिविधियों पर रोक लगा दी गई। बाजारों को बंद कर दिया गया। फैक्ट्रियों को बंद कर दिया गया। सभी निर्माण क्षेत्र में हो रहे कार्यों पर रोक लगा दी गई और लोगों से उनके घरों में रहने की अपील की गई। ऐसी स्थिति में भारत में तमाम तरह की आर्थिक गतिविधियां भी बंद हो गईं, जिसके कारण मजदूरों की स्थिति और खराब होने लगी। पहले सभी लोगों को लगा कि लॉकडाउन कुछ ही दिनों के लिए है। ऐसे में प्रवासी मजदूरों ने संयम बरता। वह जहां थे वहीं पर रहे। परंतु धीरे-धीरे जैसे ही लॉकडाउन के समय में वृद्धि होती रही।

यह मजदूरों के लिए काफी नुकसानदेह साबित होता रहा। एक तरफ जहां उनके पास कोई रोजगार नहीं था, फैक्ट्रियां

बंद हो चुकी थीं। विभिन्न आर्थिक गतिविधियां बंद हो चुकी थीं तो ऐसे में उन मजदूरों का जीना मुश्किल हो गया था। उन तमाम प्रवासी मजदूरों की दशा और खराब होती जा रही थी जो कि अपने बाल बच्चों के साथ अपना जीवन यापन कर रहे थे। उनके पास पैसे खत्म होते जा रहे थे। घरों में राशन का सामान खत्म हो चुका था और जो उनकी आवश्यकता थी वह केवल मूल आवश्यकताओं तक सिमट कर रह गई थी। जो उनके पास पैसे बचे थे वह केवल खाने पीने की वस्तुओं तक ही सीमित रह गए थे। वह भी समाप्त होने की कगार पर आ गये थे। अब इन मजदूरों के पास न घर था न खाने पीने का सामान। अब इनकी स्थिति और भी दयनीय होती जा रही थी। विभिन्न मजदूर जो किराए पर रहते थे किराया न दे पाने के कारण उनको उनके घरों से निकाला जा रहा था। ऐसे में भला एक बेबस मजदूर आखिर करे तो क्या करे।

भारत के औद्योगिक संपन्न राज्यों में अधिकतर प्रवासी मजदूर उत्तर भारत–राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार, झारखंड आदि राज्यों से आते हैं। लॉकडाउन के चलते विभिन्न परेशानियों का सामना करते हुए दिल पर पत्थर रखकर विवश होकर वे अपने घरों की तरफ पलायन करने को मजबूर हो गए। वे पैदल ही अपने गांव की तरफ निकल गए। मई–जून की कड़ी धूप में मजदूर अपनी बेबसी को अपने सर पर लिए अपने बाल बच्चों के साथ हजारों किलोमीटर का सफर पैदल ही करने के लिए निकल पड़े। एक ओर जहां लाखों मजदूरों ने पैदल सफर किया तो वहीं महिलाओं व बच्चों को भी बड़े कष्ट झेलते हुए पैदल यात्रा करनी पड़ी। जिनके पास खाने–पीने के लिए कुछ नहीं था उन्होंने रास्ते में सूखे बिस्किट और ब्रेड खाकर किसी तरह भूख को शांत किया। हालांकि कुछ जगहों पर सामाजिक संगठनों और धार्मिक संस्थाओं ने इन लाखों मजदूरों की मदद की।

ऐसी परिस्थिति में न जाने कितने ही मजदूरों की इस कोरोना काल में मृत्यु हो गई। कइयों के साथ आकस्मिक दुर्घटनाएं हो गई, जिसमें रेल हादसे सबसे प्रमुख हैं। अपने घरों की तरफ जाते हुए प्रवासी मजदूरों ने न जाने क्या–क्या नहीं झेला। पहले तो उन्हें शहरों से बाहर निकलने के लिए रोका जा रहा था। फिर कैसे भी करके वे अपने क्षेत्रों से निकल भी गए तो रास्ते में उन्हें मारा गया पीटा गया। उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया गया। उन्हें वापस उनके क्षेत्रों में भेज दिया गया। परंतु इन सभी के बावजूद भारत के कई इलाकों में लाखों की संख्या में मजदूर इकट्ठा होने लगे।

दिल्ली के आनंद विहार बस अड्डे पर तो कहीं केरल में, यही हालात भारत के बाकी शहरों में भी होने लगे। क्योंकि प्रवासी मजदूरों को पैदल एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने से रोका जा रहा था। ऐसे में मजदूर जहां वह रहते थे उसी राज्य की सीमाओं पर खड़े होकर अपने–अपने घरों की तरफ जाने का इंतजार करने को मजबूर हुए। आनन–फानन में विभिन्न राज्यों ने अपने यहां हो रही इस समस्या का समाधान निकालने की कोशिश की तथा अपने राज्यों से बसों की शुरुआत की और फिर धीरे–धीरे भारत सरकार द्वारा श्रमिक स्पेशल ट्रेनों की शुरुआत की गई। शुरुआत में मजदूरों के हालात पर काबू पाना बेहद कठिन था लेकिन फिर धीरे–धीरे शुरू होते यातायात के माध्यमों के द्वारा लाखों मजदूरों को उनकी मंजिल तक पहुंचाया गया। हालांकि इन सभी भयावह स्थिति और मजदूरों पर हुए उन तमाम अत्याचारों से बचा जा सकता था। अगर सरकार इस बारे में लॉकडाउन के पहले कोई नियम बनाती या फिर कुछ अन्य उपायों को अपनाती। सरकार को यह करना चाहिए था कि वह उन तमाम प्रवासी मजदूरों की समस्याओं का समाधान करती। उनको उनके गंतव्य स्थान तक पहुंचाने के लिए उचित यातायात साधनों का प्रबंध करती तो जितनी परेशानी हुई उससे काफी हद तक बचा जा सकता था।

लॉकडाउन में मनुष्य कैद, पर प्रकृति आजाद

● **निक्की**

साल 2020 की शुरुआत विश्व के लिए एक चुनौतीपूर्ण दौर लेकर आई। चुनौती कोविड-19 महामारी की। विश्व भर के सभी देशों ने इससे बचाव के लिए कई योजनाओं का संचालन किया। इन योजनाओं में एक व्यवस्था लॉकडाउन की रही। लॉकडाउन की व्यवस्था को विश्व स्तर पर प्रयोग में लाया गया। लॉकडाउन ने संपूर्ण जनता को कोरोना महामारी की रोकथाम व वायरस से बचाव के लिए घरों में रहने के लिए बाध्य किया। जहां लॉकडाउन से विश्व व्यापार मंदी की ओर बढ़ा। बाजार व्यवस्था तहस-नहस हुई। वहीं लॉकडाउन के कुछ सकारात्मक पहलू भी रहे। जहां लॉकडाउन और महामारी के कारण मनुष्य अपने घरों में कैद हुआ वहीं प्रकृति को खुलकर निखरने का अवसर प्राप्त हुआ। लॉकडाउन के दौरान जब सभी कारखाने, उद्योग, व्यवसाय इत्यादि बन्द हो गए थे। ऐसे में पर्यावरण को मनुष्य के क्रियाकलापों से एक विराम मिला, जिससे प्रकृति अपने स्वरूप में वापस खिलखिला उठी।

जहां मनुष्य के दैनिक क्रियाकलापों पर एक विराम लगा वहीं पर्यावरण में कुछ सकारात्मक परिवर्तन आए। इससे वायु गुणवत्ता में सुधार होता दिखा। प्रदूषण स्तर में कमी हुई। नदियों के जल की गुणवत्ता में सुधार हुआ तो बहुत से स्थानों पर जानवरों के खुले विचरण की भी खबरें सामने आई। पूरे लॉकडाउन के काल में पर्यावरण में 55 प्रतिशत की शुद्धता पाई गई, जो पिछले 40 वर्षों में कभी नहीं देखी गई थी। इस कारण मई का वह मौसम जिसमें लोग गर्मी से झुलस जाते थे, 2020 में खुशनुमा सा हो गया। इस वर्ष नदियों में निर्मल जल

का प्रभाव हुआ।

दिल्ली की जीवनदायिनी यमुना नदी के बारे में भी ऐसी ही खबरें सामने आई। सोशल मीडिया पर कई तस्वीरें आई, जिन्हें डालने वालों ने दावा किया कि जिस दिल्ली में यमुना का पानी काला और झाग भरा हुआ करता था उस यमुना में आजकल साफ पानी बह रहा है। झीलों की नगरी नैनीताल समेत भीमताल, सातताल आदि सभी झीलों का पानी न केवल पारदर्शी व निर्मल हुआ बल्कि इनकी खूबसूरती में पहले से चार चांद लग गए। इनके जल स्तर में भी वृद्धि हुई। लॉकडाउन का सबसे मुख्य परिणाम यह देखा गया कि प्रदूषण के स्तर में सबसे बड़ी गिरावट दर्ज की गई, जिसने सभी को अचंभित कर दिया।

लॉकडाउन में वन्य जीवों के खुलेआम विचरण की बहुत सी खबरें सामने आई। इंसानों के घरों में कैद होने के बाद जानवरों को उनकी जगह पर बेफिक्र विचरण करने का एक बेहतर अवसर मिला। देश भर से ऐसी तमाम खबरें सामने आई जिसमें वन्य जीव इंसानी बस्तियों तक पहुंच गए। वैसे लॉकडाउन के कारण जिस तरह से नदियों का जल साफ दिखने लगा। पेड़ हरे-भरे नजर आने लगे। हवा में स्वच्छता का अहसास होने लगा। पर्यावरण से जुड़ी ऐसी अनेक घटनाएं देखने को मिलीं, जिसका कारण विशेषज्ञों ने लॉकडाउन को बताया। हालांकि इस बात की आशंका उसी समय लगाई जाने लगी थी कि जैसे ही यह लॉकडाउन हटेगा और लोग फिर उसी तरह की दिनचर्या में मशगूल हो जाएंगे तो स्थितियां पहले जैसी ही हो जाएंगी। वही हुआ भी।

ऑनलाइन शिक्षा की मजबूरी, कोरोना के लिए जरूरी

• **भारती**

कोरोना संकट ने भारत समेत पूरे विश्व को डिजिटल बना दिया है। शारीरिक दूरी के नियमों का पालन करने के लिए सभी प्रकार के कार्य ऑनलाइन हो चुके हैं। देश में डिजिटल इंडिया की संकल्पना तो बहुत पहले आ चुकी थी, लेकिन यह वास्तविक रूप से हमारे जनजीवन में अब लागू हुआ है। ब्लैकबोर्ड से लेकर स्मार्ट बोर्ड तक के सफर को डिजिटल इंडिया की संकल्पना की स्थापना के रूप में देखा जा सकता है। डिजिटल इंडिया के प्रभाव को ऑनलाइन शिक्षा के माध्यम से इस प्रकार देखा जा सकता है कि अब तकनीक ने लाइब्रेरी का स्वरूप डिजिटल लाइब्रेरी में तब्दील कर दिया है। वहीं दूसरी ओर वास्तविक कक्षाओं के विकल्प के तौर पर ऑनलाइन कक्षाएं शुरू की गई हैं।

मौजूदा परिस्थितियों या कहें कि मजबूरियों ने हमें ऑनलाइन शिक्षा की ओर धकेला है। लेकिन ऑनलाइन शिक्षा ही आज का न्यू नार्मल है और इसे स्वीकार करना ही आज के समय की जरूरत है। वर्तमान समय में सभी शिक्षण संस्थान बंद हैं। ऐसे में ऑनलाइन शिक्षा ने बच्चों के लिए शिक्षा की राह को काफी आसान बना दिया है। इसके जरिए छात्र दुनिया के किसी भी कोने से इंटरनेट के माध्यम से शिक्षा हासिल कर सकते हैं। इसके साथ ही ऑनलाइन शिक्षा ने कई और रास्ते खोल दिए हैं। इसका सबसे ज्यादा लाभ समय की बचत के तौर पर देखा जा सकता है। विद्यार्थी कक्षा के लिए जो वक्त यात्रा पर लगाते थे, अब उसकी बचत हुई है। वहीं यात्राओं पर लगने वाला खर्च भी बचा है। हालांकि, यह कहा नहीं जा सकता कि आगे चलकर ऑनलाइन शिक्षा कितना प्रभावी होगी।

वास्तविक कक्षाओं की तुलना ऑनलाइन कक्षाओं से कभी की ही नहीं जा सकती। इन दोनों की अपनी-अपनी परिस्थितियां हैं तथा अपने-अपने दायरे हैं। साक्षात शिक्षक द्वारा शिक्षा हासिल करना और वर्चुअल माध्यम से शिक्षा हासिल करना दोनों में अंतर रहेगा ही। इनके बीच की खाई को कभी पाटा नहीं जा सकता। इस अंतर को हम एक उदाहरण से समझ सकते हैं। सिनेमा हॉल में किसी फिल्म को देखना और घर पर बैठे अपने फोन और लैपटॉप के माध्यम से किसी फिल्म को देखने में अंतर तो है। लेकिन यह दोनों ही हमारी बोरियत को कम करने तथा मनोरंजन प्रदान करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ऐसे ही ऑनलाइन शिक्षा है जो भले ही वास्तविक शिक्षा से भिन्न हो, लेकिन यह हमारी शिक्षा की जरूरतों को पूरा करता है। हालांकि, ऑनलाइन शिक्षा के माध्यम से शिक्षकों को बच्चों को अपनी कक्षा में बांधे रखना, उन्हें वास्तविक शिक्षा की तरह ही प्रासंगिक और रोचक कक्षा देना एक चुनौती है। लेकिन यह आशा जताई जा रही है कि ऑनलाइन शिक्षा में समय के साथ हम जितना सहज होते जाएंगे यह माध्यम उतना ही लाभकारी सिद्ध होगा। जैसे हर सिक्के के दो पहलू होते हैं वैसे ही ऑनलाइन शिक्षा का नकारात्मक पहलू भी है। हम अच्छे से इस बात से वाकिफ हैं कि दूरदराज के इलाकों में इंटरनेट की सुविधा, भारत की गरीबी ऑनलाइन शिक्षा के लिए एक चुनौती है तथा साथ ही यह पिछड़े तबके के लिए एक सामाजिक भेदभाव भी है।

काशी की नागरी नाटक मंडली

● **विकास त्रिपाठी**

साल 2018 में वाराणसी जिले में नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा को स्थापित किया गया। अभिनय और रंगमंच के इस संस्थान का काशी में आगमन होना बहुत ही महत्वपूर्ण था। आधुनिक हिंदी नाटकों को जन्म देने वाली नगरी में नाट्य परंपरा की कीर्ति धूमिल हो चुकी थी। पुराने रंगमंचों और थियेटरों की जगह अब मल्टीप्लेक्स और मॉल ने ले ली थी। नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा को चलाने के लिए जिस इमारत को चुना गया, वह भी बहुत महत्वपूर्ण है। नये एनएसडी केंद्र के लिए वाराणसी की नागरी नाटक मंडली के थियेटर को किराए पर लिया गया। नागरी नाटक मंडली वही संस्थान है जिसे हिंदी की नाटक परंपरा को विकसित करने और आगे बढ़ाने का श्रेय दिया जाता है। नागरी नाटक मंडली का प्रारंभिक नाम श्री नाट्यकला संगीत प्रवर्तक मंडली था। इसकी स्थापना 1906 ई. में भारतेंदु हरिश्चंद्र के भतीजों ने की थी। जल्द ही श्रीकृष्णचंद्र और श्रीब्रजचंद्र के बीच मतभेद के कारण इस नाट्य मंडली के दो भाग हो गये। इनका नाम था भारतेंदु नाटक मंडली और नागरी नाटक मंडली। आगे चलकर दोनों ने अपनी अलग-अलग पहचान बना ली।

आधुनिक हिंदी नाटकों के पितामह भारतेंदु हरिश्चंद्र ने नाटक की जिस शैली का विकास किया था, इन दोनों संस्थाओं ने उसके अलग-अलग स्वरूपों की अगुवाई की। भारतेंदु नाटक मंडली का जोर फारसी नाटकों के हिंदी संस्करण पेश करने पर था तो नागरी नाटक मंडली नये हिंदी नाटकों को स्थान देने का प्रयास कर रही थी। इन दोनों ही संस्थाओं ने अपने अथक प्रयासों से हिंदी कला जगत को हजारों कलाकार दिए। दोनों ही संस्थाओं ने नाटक की प्रस्तुति के लिए काशी में एक जीवंत परिवेश रचा। काशी के स्कूल-कॉलेजों में, क्लब और बाजारो में नाटकों का मंचन होने लगा। इन नाटकों मे महाराणा प्रताप, सत्य हरिश्चन्द्र, महाभारत, सुभद्राहरण, भीष्म

पितामह, बिल्व मंगल, संसार स्वप्न, कलयुग आदि प्रमुख थे। लेकिन कुछ वर्षों बाद आर्थिक अभाव के कारण भारतेंदु नाटक मंडली बंद हो गई। भारतेंदु नाटक मंडली फारसी अनुवादित नाटकों के मंचन पर ध्यान केंद्रित कर रही थी, जिसके कारण हिंदी भाषी जनता का इसके प्रति मोहभंग होना स्वाभाविक था। दूसरी तरफ नागरी नाटक मंडली हिंदी के नए-नए नाटकों के साथ आधुनिक प्रयोग कर रही थी। आने वाले समय में जयशंकर प्रसाद और प्रेमचंद जैसे महान साहित्यकार नागरी नाटक मंडली से जुड़े।

नागरी नाटक मंडली पर जयशंकर प्रसाद और प्रेमचंद का प्रभाव

हिंदी साहित्य के विकास क्रम में नाटक विधा में अनेक प्रयोग किए गए। इन प्रयोगों मे जयशंकर प्रसाद और प्रेमचंद सबसे आगे रहे। जयशंकर प्रसाद के नाटकों का परिप्रेक्ष्य ऐतिहासिक था, बावजूद इसके इन नाटकों ने समाज की मानवीय संवेदनाओं को छूने का काम किया। नागरी नाटक मंडली ने इन नाटकों को काशी और हिंदी पट्टी के समाज तक पहुंचाने का जिम्मा उठाया। इस दौर में ही आगा हश्र नाम के महान नाटककार और पटकथा लेखक सामने आए। नागरी नाटक मंडली के सानिध्य में आगा हश्र ने कई पारसी व्यवसायिक शैली के नाटकों की पटकथा लिखी, जिसे नागरी नाटक मंडली ने खूब प्रचारित-प्रसारित किया। नागरी नाटक मंडली द्वारा हिंदी साहित्य का चुनाव इसके लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण साबित हुआ। इस दौरान मंडली ने नाट्यशास्त्र के सैद्धांतिक और शास्त्रीय अध्ययन की परंपरा को भी आगे बढ़ाया। अभिनय सीखने और सिखाने दोनों का कार्य यहां पर होता रहा। प्रेमचंद का नागरी नाटक मंडली से जुड़ना हिंदी नाटकों के लिए एक और अद्भुत संयोग था। प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यासों के साथ ही नाटक विधा में भी कई कारनामे किए। शुरुआती दौर में प्रेमचंद ने यूरोपीय नाटकों का हिंदी अनुवाद किया। इनकी लोकप्रियता को देखकर मंडली ने प्रेमचंद से स्वरचित नाटक लिखने का आग्रह किया। प्रेमचंद ने नागरी नाटक मंडली को निराश न करते हुए कई कालजयी रचनाएं कीं। प्रेमचंद के नाटकों में चांदी की डिबिया, पवित्र यात्र और टॉलस्टॉय की कहानियां विशेषकर प्रचलित हुईं।

हिंदी फिल्मों का आगमन और नाटक विधा से समाज का अलगाव

बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में बोलती फिल्मों का आगमन हुआ। फिल्मों में नाटकों की तुलना में शोहरत और मुनाफा बहुत अधिक था। वाराणसी जो अब तक नाट्य परंपरा का एक बड़ा केंद्र बन चुका था, इसके लिए यह बहुत घातक साबित हुआ। कई पुराने और ऐतिहासिक नाटक घर सिनेमा हॉल में परिवर्तित कर दिए गए। भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा स्थापित बनारस थियेटर, जिसे टकसाल के नाम में जाना जाता था अब एक फिल्म थियेटर बनकर रह गया। इस दौर में भी नागरी नाटक मंडली ने हार नहीं मानी। हिंदी नाटकों की प्रतिस्पर्धा में अकेले खड़े होने के बावजूद यह अपने जमाने में कहीं आगे थी। जिस समय वाराणसी के अन्य थियेटर बंद हो रहे थे, उस समय आर्थिक रूप से सुदृढ़ होने के कारण नागरी नाटक मंडली ने अपने लिए कबीर चौरा क्षेत्र में एक आधुनिक रंगमंच का निर्माण किया। हालांकि 1935 से 1947 तक इस हॉल में केवल 3 नाटक करवाए गए। इन सभी कठिनाइयों के बावजूद आज भी नागरी नाटक मंडली अपने आप को जीवित रखे हुए है।

आज 21वीं सदी में जहां स्मार्टफोन और टेलीविजन लोगों के मनोरंजन का प्रमुख साधन बन गया है, नागरी नाटक मंडली अब भी नियमित रूप से नाटकों और अन्य रंगमंच के कार्यक्रमों का आयोजन कराती है। कालिदास की अभिज्ञान शाकुंतलम् का आधुनिक अवतार हो या रामायण का उर्दू अनुवाद, महात्मा गांधी के सत्याग्रह पर बनी प्रथम सत्याग्रही हो या प्रेमचंद के पुराने नाटक, सभी का मंचन नागरी नाटक मंडली के मंच से होता है। भले ही आर्थिक रूप से यह व्यवसाय लाभदायक न हो, पर नागरी नाटक मंडली आज भी नाट्य परंपरा को आगे ले जाने के लिए प्रयासरत है।

अपना पूरा दिन कहां खर्च करते हैं भारतीय

• मानषी बिष्ट

एनएसओ ने अपनी सर्वे रिपोर्ट में ग्रामीण और शहरी लोगों की दिनचर्या के बारे में जानकारी जुटाई है। भारतीय सांख्यिकी संगठन (एनएसओ) ने टाइम यूज इन इंडिया 2019 सर्वे रिपोर्ट 9 अक्टूबर 2020 को जारी की है। एनएसओ ने पहली बार ऐसी कोई रिपोर्ट तैयार की है जिसमें बताया गया है कि भारतीय अपना पूरा दिन किन-किन गतिविधियों में खर्च करते हैं? उनकी दिनचर्या क्या है? यह आंकड़ा जुटाने के लिए संगठन ने 1 जनवरी 2019 से 31 दिसंबर 2019 के बीच यह सर्वे किया। इसमें 1,38,799 घरों के 4,47,250 लोगों को शामिल किया गया, जिनके परिवार में छह साल से अधिक उम्र के सभी सदस्यों की दिनचर्या का विश्लेषण किया गया। इनमें 2,73,195 ग्रामीण और 1,74,055 शहरी शामिल थे। सर्वे के दौरान सुबह 4 बजे से लेकर अगले दिन सुबह 4 बजे तक के कामकाज के बारे में बातचीत की गई।

देखभाल :

इस रिपोर्ट के मुताबिक भारतीय एक दिन में सबसे अधिक 726 मिनट अपनी देखभाल पर खर्च करते हैं। दिलचस्प बात यह है कि सबसे अधिक यानी 737 मिनट ग्रामीण पुरुष अपनी देखभाल पर खर्च करते हैं। इससे यह साफ पता चलता है कि शहरी पुरुष, ग्रामीण पुरुष के मुकाबले अपनी देखभाल में कम समय लगाते हैं। स्वयं की देखभाल में सोना, खाना-पीना, सेहत पर ध्यान देना, इलाज कराना, अपनी देखभाल के लिए कहीं आना-जाना शामिल है।

रोजगार :

इसके बाद सबसे अधिक समय रोजगार और उससे जुड़ी गतिविधियों पर खर्च किया जाता है। एक दिन में 429 मिनट रोजगार और उससे जुड़ी गतिविधियों पर खर्च किए जाते हैं। इस मामले में गांव वालों के मुकाबले शहर वालों को ज्यादा समय देना पड़ रहा है। शहर के लोगों को दिन के 485 मिनट इस पर खर्च करने पड़ रहे हैं। सबसे अधिक शहरी पुरुषों को 514 मिनट, लगभग 9 घंटे रोजगार के लिए खर्च करने पड़ रहे हैं। इनके मुकाबले ग्रामीण पुरुषों को 434 मिनट खर्च करने पड़ रहे हैं। अगर महिलाओं की बात करें तो ग्रामीण महिलाओं को 317 मिनट और शहरी महिलाओं को 375 मिनट रोजगार व उससे जुड़ी गतिविधियों के लिए बिताने पड़ रहे हैं। इन आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि शहरी लोग रोजगार व उससे जुड़ी गतिविधियों को ज्यादा समय दे रहे हैं और यही कारण है कि वह खुद की देखभाल में ज्यादा समय नहीं दे पा रहे हैं।

परिवार को समय :

एक और दिलचस्प आंकड़ा बताता है कि ग्रामीण परिवेश की महिलाएं अपने दिन के 301 मिनट अपने परिवार के सदस्यों के लिए खर्च कर देती हैं, जबकि इनके मुकाबले शहरी महिलाएं 293 मिनट अपने परिवार के सदस्यों के लिए खर्च करती हैं। इस मामले में ग्रामीण पुरुष 98 मिनट और शहरी पुरुष 94 मिनट ही खर्च करते हैं। इन आंकड़ों से यह स्पष्ट दिखता है कि ग्रामीण और शहरी दोनों लोगों का लगभग समान समय परिवार पर खर्च होता है। इससे यह भी दिखता है कि शहरी लोग जहां रोजगार पर ज्यादा समय दे रहे हैं वही परिवार को भी पूरा समय दे रहे हैं, जिसकी वजह से वह खुद की देखभाल पर उतना ध्यान नहीं दे पा रहे हैं।

सामाजिक और धार्मिक कार्य :

लोग समाज के काम करने, सूचनाएं इधर से उधर पहुंचाने, ईमेल, चैट आदि पर भी बड़ा समय खर्च कर रहे हैं। सर्वे रिपोर्ट के मुताबिक लोग दिन में औसतन 143 मिनट सोशलाइजिंग एंड कम्युनिकेशन, सामाजिक भागीदारी और धार्मिक कार्यों पर खर्च कर रहे हैं, जबकि संस्कृति, मास मीडिया और खेलों पर 165 मिनट खर्च किए जा रहे हैं।

शिक्षा :

सीखने यानी शिक्षा आदि पर भी ठीक-ठाक समय खर्च किया जा रहा है। औसतन दिन के 424 मिनट शिक्षा पर खर्च किए जा रहे हैं। इस मामले में शहरी, गांव वालों से थोड़ा आगे हैं। गांवों में 422 मिनट शिक्षा पर खर्च किए जा रहे हैं तो शहरों में 430 मिनट खर्च किए जा रहे हैं। इसका एक कारण ग्रामीण इलाकों में इंटरनेट तकनीक की कम पहुंच, तकनीक की कम जानकारी और आर्थिक कमजोरी भी है।

दिल्ली स्ट्रीट फूड यानी असली खाना खजाना

• गीतू

दिल्ली वालों में भोजन के लिए एक अलग ही दीवानापन हैं। बड़े रेस्टोरेंट से लेकर छोटी रेहड़ी तक स्वाद ही स्वाद। हमें पूरे भारत के भोजन का जायका दिल्ली में बैठे मिल सकता हैं। विभिन्न राज्यों के स्वादों का मिश्रण, विविधता और स्ट्रीट फूड ही दिल्ली के भोजन की सबसे बड़ी खासियत है। यहां भोजन केवल पेट भरने के लिए नहीं खाया जाता बल्कि लोग कुछ नया चखने का बहाना ढूंढते हैं। दिल्ली के दिलवाले दावत चाहते हैं। यही दावत बहुत से लोगों के लिए एक उम्मीद बनकर उभरी है। दिल्ली में भोजन लोगों का दो तरीकों से पेट भरता है। पहला खाना खाकर और दूसरा खिलाकर। कोरोना काल में तालाबंदी के दौरान भी जब बहुत से लोगों के रोजगार चले गए ऐसे में भोजन ने लोगों को सहायता की। लोगों ने दूसरों का पेट भरके अपना पेट भरा। बहुत से ऐसे लोग हैं जो मजबूरी में भोजन बेचना शुरू करते हैं, पर स्वाद और मेहनत मजबूरी को अवसर बना देता है। इस लेख में ऐसे ही कुछ ठिकानों के बारे में आपको बताने का प्रयास करते हैं।

बाबा का ढाबा :

मालवीयनगर स्थित एक छोटा सा ढाबा है। यह ढाबा 80 साल के कान्ता प्रसाद और बादामी देवी द्वारा चलाया जाता है। आज पूरी दिल्ली में शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा होगा जो बाबा के ढाबा से परिचित न हो। बाबा का ढाबा एक वीडियो से मशहूर हुआ। वीडियो में 80 साल के दम्पति को रोते हुए देखा गया। लॉकडाउन के बाद ग्राहकों की कमी से जूझ रहे दम्पति का वीडियो इंस्टाग्राम, फेसबुक, यूट्यूब पर वायरल हो गया। इस काम को बाबा का ढाबा के एक शुभचिंतक ने किया। वीडियो वायरल होते ही अमिताभ बच्चन, रवीना टंडन, सुनील शेट्टी जैसे कलाकारों ने दम्पति की विभिन्न तरीकों से सहायता की। अपारशक्ति खुराना ने खुद बाबा के ढाबे में भोजन किया। ढाबे में ग्राहकों की कमी खत्म हो गई। दिल्ली के लोगों ने आगे बढ़कर दम्पति का साथ दिया। सहायता की। पता लगा कि ढाबे में रोज 300-400 लोग आने लगे।

द मैगी बाउल :

यह मालवीयनगर में स्थित स्टाल है, जो दर्पण द्वारा लगाया जाता है। दर्पण शुरू से चाहते थे कि वह अपना कुछ काम शुरू करें पर उन्हें मौका नहीं मिला। लॉकडाउन में रोजगार चले जाने के कारण मैगी बेचना शुरू किया। दर्पण ने मैगी को एक अलग स्वाद दिया। धीरे-धीरे लोगों की संख्या बढ़ती गई। द मैगी बाउल की नाचोस मैगी और मोमो मैगी ने उन्हें मशहूर बना दिया। दिल्ली वासियों के बीच द मैगी बाउल चर्चित हो गया।

मिसेज इडली :

अहमदाबाद की रहने वाली गीता 2016 से दिल्ली में रहती हैं। यहां गीता लोगों के घरों में काम करती थीं। काम करने के लिए उन्हें बच्चों से दूर रहना पड़ता था। उन्होंने नौकरी छोड़ दी और शालीमार बाग में इडली-सांभर का स्टाल लगाना शुरू किया। धीरे-धीरे लोगों की भीड़ उमड़ती गई और काम बढ़ता गया, जिसे देख गीता ने अपना स्टाल बढ़ाया और डोसा बेचना भी शुरू कर दिया। आज गीता मिसेज इडली के नाम से चर्चित हैं।

कंप्यूटराइज्ड छोले कुलचे :

एक छोटा सा स्टाल है, जो दिल्ली के निर्माण विहार में स्थित है। छोले-कुलचे तेज गति से बनाने के कारण लोगों ने इसे कंप्यूटराइज्ड छोले-कुलचे का नाम दे दिया। यहां छोले-कुलचे बनाते समय एक अलग शब्दावली का प्रयोग किया जाता है, जिसने इसे बहुत चर्चित बना दिया। छोले-कुलचे बनाने की प्रक्रिया को ओवर कहा जाता है। नींबू को लिक्विड, हरी मिर्च को कैप्सूल और टमाटर को मक्खन कहा जाता है। जनाब अगर आप भी दिल्ली ही नहीं वरन पूरे भारत का स्वाद चखना चाहते हैं तो फटाफट दिल्ली की सड़कों पर निकल जाइये और हां उम्मीद रखिये, यहां के स्ट्रीट फूड आपको निराश नहीं करेंगे।

खेलों के माध्यम से विरोध करना जरूरी

• अभिषेक कुमार

हाल ही में जेसन होल्डर आईपीएल का हिस्सा बने। उन्हें सनराइजर्स की टीम में बतौर रिप्लेसमेंट लिया गया। आईपीएल का हिस्सा बनने के साथ ही होल्डर ने अपनी निराशा जताई। उन्होंने कहा कि आईपीएल जो दुनिया की सबसे अमीर लीग है, उसमें ब्लैक लाइव्स मैटर कैम्पेन का जिक्र न होना और न ही कोई चर्चा होना काफी निराशाजनक है।

2020 में जब बीएलएम कैम्पेन अमेरिका में अपने चरम पर था तब होल्डर ने आईपीएल में हुई रंगभेद की घटना का जिक्र किया था। उन्होंने कहा था कि आईपीएल के दौरान ईशांत शर्मा उन्हें कालू नाम से बुलाया करते थे। होल्डर ने इंस्टाग्राम पर लिखते हुए कहा कि मुझे इस शब्द का मतलब अब पता चला है। ऐसी घटना के बाद आईपीएल में बीएलएम कैम्पेन को लेकर चर्चा की मांग जायज लगती है, लेकिन क्या खेल के मैदान पर विरोध दर्ज करवाने से कुछ फर्क पड़ता है?मैदान पर विरोध की और कौन सी घटनाएं हैं, यह जानना जरूरी है। मैदान पर प्रदर्शन का इतिहास काफी पुराना रहा है। खासकर रंगभेद को लेकर प्रदर्शन। अलग-अलग समय पर अलग-अलग खेलों में विरोध देखने को मिले हैं। आगे हम उन्हीं में से कुछ की बात करेंगे।

1. ओलंपिक 1968

1968 ओलंपिक के टैंक एंड फील्ड इवेंट में अमेरिका के टॉमी और जोन कार्लोस ने स्वर्ण और कांस्य पदक जीता। जब उन्हें सम्मानित करने के लिए पोडियम पर बुलाया गया तब उन्होंने राष्ट्रगान के दौरान हवा में मुट्ठी उठाकर अपना विरोध दर्ज करवाया। वह पोडियम पर बिना जूतों के खड़े थे। ऐसा करके वह लोगों का ध्यान ब्लैक अमेरिकन के खिलाफ लिंचिंग और गरीबी की तरफ आकर्षित करवाना चाहते थे। इसके परिणाम स्वरूप दोनों ही खिलाड़ियों को ओलंपिक से निष्कासित कर दिया गया।

2. ऑल स्टार मैच बायकाट 1964

नेशनल बास्केटबॉल एसोसिएशन के खिलाड़ी अपने लिए रिटायरमेंट पेंशन और अन्य सुविधाएं उपलब्ध करवाना चाहते थे, जिसके लिए खिलाड़ियों ने ऑल स्टार मैच को बायकाट करने की धमकी देना शुरू कर दिया। अन्त में लीग को खिलाड़ियों की मांगें माननी पड़ीं।

3. कॉलिन कैपर्निक 2016

नेशनल फुटबॉल लीग 2016 के एक मैच के दौरान कॉलिन कैपर्निक अमेरिकी राष्ट्रगान के दौरान घुटनों के बल बैठ गए। ऐसा करके वह रंगभेद के खिलाफ अपना विरोध दर्ज करवाना चाहते थे। इस घटना ने कॉलिन को रातों-रात अमेरिका में आलोचना का मुख्य केन्द्र बना दिया। साथ ही कुछ लोग कॉलिन के समर्थन में भी उतरे। विरोध करने वाले लोगों ने गुस्से मे कॉलिन की जर्सियां जलाई और साथ ही साथ राष्ट्रगान का अपमान करने के आरोप भी लगाए। एक

पोल के अनुसार उन्हें लीग का सबसे नापसंदीदा खिलाड़ी घोषित किया गया, लेकिन लीग के अन्त तक उनकी जर्सी लीग में सबसे ज्यादा बिकने वाली जर्सी थी।

4. मिलवॉकी बक्स 2020

मिलवॉकी बक्स ने विरोध में एनबीए 2020 के एक प्लेऑफ गेम का बहिष्कार किया था। यह विरोध पुलिस शूटिंग में मारे गए जैकब ब्लैक को इंसाफ दिलाने के लिए किया गया था। यह मैच ऑरलैंडो मैजिक के खिलाफ खेला जाना था।

5. इंग्लैण्ड बनाम वेस्टइंडीज 2020

जब 2020 में कोरोना के कारण रुका क्रिकेट का खेल वापस मैदान पर लौटा, तब हमे फील्ड पर कुछ अलग देखने को मिला। बीएलएम कैम्पेन के समर्थन में वेस्टइंडीज की टीम और इंग्लैण्ड की टीम अपने घुटनों पर बैठ गई।

विरोध के फायदे

1. सामाजिक जागरुकता

विरोध सामाजिक जागरुकता में मदद करता है। जब समाज के लोग किसी विषय को लेकर विरोध देखते हैं तो वे उसको लेकर जागरुक होते हैं। कई बार विरोध के कारण खेल के दर्शकों की संख्या में भी कमी आती है। 2020 में विरोध के कारण एनबीए की दर्शक संख्या में 11 प्रतिशत तक की गिरावट दर्ज की गई।

2. सशक्तीकरण और एकीकरण

विरोध पिछड़े और हाशिये पर बैठे लोगों की आवाज बनता है। साथ ही पिछड़े और हाशिये के समाज के एकीकरण और सशक्तीकरण में सहायक होता है।

3. सुधार

कोई विरोध तब सफल होता है, जब उसकी मांगों पर ध्यान दिया जाए। यह विरोध नए राजनीतिक मंच के माध्यम से सफलता प्राप्त करते हैं। कई बार मांगों को लेकर कानूनों और एनजीओ का निर्माण होता है। जैसा हमे आईपीएल में देखने को मिला कि होल्डर के बयान के कुछ मैच बाद मुंबई इंडियन्स के हार्दिक पांड्या ने मैदान पर घुटने टेककर बीएलएम कैम्पेन का समर्थन किया। इसलिए किसी भी सामाजिक खामी के बारे में चर्चा करना जरूरी है। इसी से भविष्य में उससे निजात मिलने की संभावना बनती है।

सुनहरे सपने और आशंकाओं के बीच नए कृषि कानून

● जागृति रावत

हाल ही में केंद्र सरकार ने कृषि सुधारों पर तीन विधेयकों को प्रतिस्थापित करने के लिए कदम उठाया। यह तीन विधेयक हैं-किसानों का व्यापार और वाणिज्य (संवर्धन और सुविधा) विधेयक 2020। मूल्य आश्वासन और फार्म सेवा विधेयक 2020 के किसान (सशक्तीकरण और संरक्षण) समझौते और आवश्यक वस्तु (संशोधन) विधेयक 2020। तीनों विधेयकों के अलग-अलग लाभ और नुकसान बताए जा रहे हैं। दोनों पहलुओं पर बात करने से पहले यह जान लेते हैं कि किसानों और उनकी फसलों को बेचने के लिए पहले क्या व्यवस्था थी।

अगर इतिहास पर जाएं तो पता चलता है कि 1947 से पहले किसानों की परिस्थिति अलग थी। किसान अपनी उपज सीधे ग्राहकों तक पहुंचा सकते थे परन्तु उन्हें फसल पैदा करने के लिए जमींदारों, साहूकारों से अधिक ब्याज पर कर्ज लेना पड़ता था, जिसे चुकाने में असफल होने के कारण जमींदार और साहूकार किसानों की सारी उपज हड़प लेते थे। फिर दोबारा उत्पादन करने के लिए किसानों को फिर कर्ज लेना पड़ता था। यह प्रक्रिया चलती रहती थी व किसान कभी भी कर्जे से मुक्त नहीं हो पाता था। जब देश आजाद हुआ तो किसानों की परिस्थिति सुधारने व उन्हें शोषण से बचाने के लिए सरकार एपीएमसी मंडी एक्ट लाई, जिसके तहत किसान से न कोई सीधा फसल या उत्पाद खरीद सकता था न किसान बेच सकता था। इसका उद्देश्य किसान को जमींदारों, शोषणकर्ताओं आदि से बचाना था। ऐसे किसान को अपनी फसल बेचने के लिए मंडी जाना होता था और खरीदने वाले जो बिचौलिया होते थे उन्हें भी मंडी जाना पड़ता था।

हर राज्य की अपनी मंडी होती है। अगर किसी व्यापारी को कोई भी उत्पाद खरीदना है तो उसे पहले एपीएमसी से लाइसेंस लेना अनिवार्य था, पर इसमें भी किसानों की फसल एमएसपी से अधिक दाम पर व्यापारी नहीं लेते थे। सारे व्यापारी एक ही दाम तय करते थे तो किसानों को उतने में ही अपनी फसल बेचनी पड़ती थी, क्योंकि उनकी फसल अधिक मात्रा में एक ही जगह बिक जाती थी। किसान का समय बचता था, इसलिए कई किसान जो अत्यधिक परिश्रम से कृषि करते थे वे आवाज नहीं उठाते थे। वहीं कुछ सीधे तौर पर भी फसल बेचते थे। सीधे तौर पर बताएं तो किसान एपीएमसी मंडी में जाता था। वहां उसे कमीशन एजेंट मिलता था जो उससे फसल खरीदता। फिर आगे उसे व्यापारी के पास बेचता था। बाद में फसल का मूल्य इतना बढ़ जाता था कि किसान को भी नहीं पता होता था।

किसान का उत्पाद व्यापारी से होलसेलर, रिटेलर, वेंडर्स आदि को बेचा जाता था। ऐसे में किसान से ग्राहक तक आते-आते फसल के मूल्य में लगभग 50 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है। लगभग 25 प्रतिशत फसल खराब हो जाती है। इसके अलावा बफर स्टॉक द्वारा भी महंगाई बढ़ रही थी, जिसमें किसानों को कोई लाभ नहीं हो रहा था। इसलिए यह विधेयक लाया गया, पर जब संसद में इसे पेश किया गया तो बहुत विवाद हुआ। अब कई क्षेत्रों में किसान इसके खिलाफ अपनी आवाज उठा रहे हैं, जिसमें पंजाब और हरियाणा के किसान अधिक संख्या में हैं।

नया कानून एक पारिस्थितिकी तंत्र बनाएगा, जहां किसान और व्यापारी कृषि उपज की बिक्री और खरीद की पसंद का स्वतंत्रता का आनंद लेंगे। यह राज्य कृषि उत्पादन विपणन संगठनों के तहत अधिसूचित बाजारों के भौतिक परिसर के बाहर विरोध मुक्त अंतरराज्यीय और इंट्रा राज्य व्यापार और वाणिज्य को भी बढ़ावा देगा। यह देश में व्यापक रूप से विनियमित कृषि बाजारों को खोलने का एक ऐतिहासिक कदम है। यह किसान के लिए अधिक विकल्प खोलेगा, किसानों के लिए विपणन लागत कम करेगा। उन्हें बेहतर

मूल्य दिलाने में मदद करेगा। यह सरप्लस उत्पादन वाले क्षेत्रों के किसानों को बेहतर मूल्य और कम कीमत वाले क्षेत्रों के उपभोक्ताओं की मदद करने में मदद करेगा। इलेक्ट्रॉनिक रूप से निर्बाध व्यापार सुनिश्चित करने के लिए विधेयक लेनदेन मंच में एक इलेक्ट्रॉनिक ट्रेडिंग का भी प्रस्ताव करता है।

इस अधिनियम के तहत किसानों को अपनी उपज की बिक्री पर कोई उपकर या लगान नहीं लिया जाएगा। आगे किसानों के लिए एक अलग विवाद समाधान तंत्र होगा। मूल्य आश्वासन और फार्म सेवा विधेयक, 2020 का किसान (सशक्तीकरण और संरक्षण) कृषि समझौतों पर एक राष्ट्रीय रूपरेखा प्रदान करने का प्रयास करता है जो किसानों को कृषि व्यवसाय फर्मो, प्रोसेसर, थोक विक्रेताओं, निर्यातकों या बड़े खुदरा विक्रेताओं के साथ संलग्न करने के लिए किसानों की रक्षा और उन्हें सशक्त बनाता है। भविष्य की खेती की सेवाएं और बिक्री एक उचित और पारदर्शी तरीके से परस्पर सहमत पारिश्रमिक मूल्य ढांचे में और संबंधित या आकस्मिक उपचार से जुड़े मामलों के लिए होती है।

नया कानून किसानों को थोक विक्रेताओं, एग्रीगेटर्स, थोक विक्रेताओं, बडे रिटेलर्स, निर्यातकों आदि के साथ जुड़ने के लिए सशक्त बनाएगा, जो किसी भी स्तर पर खेल के क्षेत्र में निवेशकों के डर के बिना होगा। यह किसान से बाजार के अप्रत्याशित होने का जोखिम प्रायोजक को हस्तांतरित करेगा और किसान को आधुनिक तकनीक और बेहतर इनपुट तक पहुंच बनाने में सक्षम करेगा। यह विपणन की लागत को कम करेगा और किसानों की आय में सुधार करेगा। यह कानून राष्ट्रीय और वैश्विक बाजारों में और कृषि के बुनियादी ढांचे में भारतीय कृषि उत्पादों की आपूर्ति के लिए आपूर्ति श्रृंखला के निर्माण के लिए निजी क्षेत्र के निवेश को आकर्षित करने के लिए एक उत्प्रेरक के रूप में काम करेगा। किसानों को उच्च मूल्य कृषि के लिए प्रौद्योगिकी और सलाह तक पहुंच मिलेगी और ऐसी उपज के लिए तैयार बाजार मिलेगा। किसान प्रत्यक्ष विपणन में संलग्न होंगे, जिससे बिचौलियों का सफाया होगा, जिसके परिणाम स्वरूप मूल्य की पूर्ण प्राप्ति होगी। किसानों को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान की गई है। किसानों की भूमि की बिक्री, पट्टे या बंधक पूरी तरह से निषिद्ध है और किसानों की भूमि भी किसी वसूली से सुरक्षित है। निवारण के लिए स्पष्ट समय रेखाओं के साथ प्रभावित विवाद समाधान तंत्र प्रदान किया गया है।

किसानों ने आशंका व्यक्त की है कि इन बिलों को पारित करने के बाद वे न्यूनतम समर्थन मूल्य, प्रणाली के निराकरण का मार्ग प्रशस्त करेंगे और कृषि समुदाय को बड़े कार्पोरेट्स की दया पर छोड़ देंगे। किसानों ने कहा कि प्रस्तावित विधान कॉरपोरेट कृषि बिल थे, जिन्हें बड़े कॉरपोरेट्स जो भारतीय खाद्य और कृषि व्यवसाय पर हावी होना चाहते थे, के अनुरूप बनाया गया था। कांग्रेस ने भी उन्हें किसान हितैषी बनाने के लिए विधेयकों में कुछ बदलावों का सुझाव दिया था। ये विधेयक किसानों के हितों के खिलाफ हैं। यदि सरकार उन्हें लागू करना चाहती है तो उन्हें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कोई भी खरीद एमएसपी से नीचे न हो। सरकार एक स्पष्ट प्रावधान प्रदान करने के लिए अलग से एक चौथा विधेयक ला सकती है कि यदि कोई एजेंसी एमएसपी से नीचे किसान की फसल खरीदती है तो उसके खिलाफ कानूनी कार्रवाई की जानी चाहिए।

कांग्रेस के वरिष्ठ नेता रणदीप सिंह सुरजेवाला ने कहा कि ये विधेयक न केवल किसानों को तबाह करेंगे, बल्कि मंडी व्यवस्था को भी प्रभावित करेंगे और खेत मजदूरों और आतताइयों या कमीशन एजेंटों को भी प्रभावित करेंगे। सरकार क्या कदम उठा रही है, इस पर कृषि मंत्री नरेंद्र सिंह तोमर ने कहा कि किसानों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) तंत्र जारी रहेगा और यह व्यवस्था दो प्रस्तावित विधानों से प्रभावित नहीं होगी।

मंत्री ने यह भी स्पष्ट किया कि इन बिलों का न्यूनतम समर्थन मूल्य तंत्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। वह पहले की तरह जारी रहेगा। इसके अलावा इन दो सुधार बिलों के कारण किसान सीधे बड़े व्यवसाय और निर्यातकों के साथ जुड़ पाएंगे और खेती को लाभकारी बना पाएंगे। उन्होंने आश्वासन दिया कि ये विधेयक राज्यों के कृषि उत्पादन विपणन समिति अधिनियमों का अतिक्रमण नहीं करेंगे। ये बिल यह सुनिश्चित करेंगे कि किसानों को उनकी उपज का बेहतर मूल्य मिले। वे मंडियों के नियमों के अधीन नहीं होंगे और अपनी उपज किसी को भी बेचने के लिए स्वतंत्र होंगे। उन्हें कोई कर नहीं देना होगा।

समय की मांग है इलेक्ट्रिक वाहनों को बढ़ावा देना

● **पूजा अग्रवाल**

देश में बढ़ते प्रदूषण और रोजाना बढ़ते पेट्रोल व डीजल की कीमतों के कारण सरकार ने देश में बैट्री से चलने वाले वाहन यानी कि इलेक्ट्रिक वाहन की उपयोगिता को बढ़ाने का निर्णय लिया। दिल्ली सरकार की कोशिश है कि 2040 तक दिल्ली में 25 फीसदी ई-वाहन पंजीकृत किए जाएं। कोरोना काल में लॉकडाउन के बाद इलेक्ट्रिक वाहनों की मांग बढ़ने लगी है। लोगों को पर्यावरण का बुरा हाल पता लगने से लोग पर्यावरण के लिए जागरूक हो गए हैं, जिसके कारण ईंधन वाले वाहन न खरीदने की बजाय बैट्री से चलने वाले वाहन खरीदने पर जोर दे रहे हैं। ई-वाहनों को बढ़ावा क्यों जरूरी है?दिल्ली में बढ़ते प्रदूषण के कारण दिल्ली की वायु गुणवत्ता बहुत खराब हो चुकी है। दिल्ली की हवा दम घोंटू व जहरीली बन गई है, जिसके कारण सांस संबंधी बीमारियां बढ़ने लगी हैं।

दिल्ली में सबसे ज्यादा प्रदूषण वाहनों में से निकलने वाले धुएं के कारण होता है। यदि ई-वाहन का प्रयोग किया जाएगा तो प्रदूषण के स्तर में कमी देखने को मिलेगी। अक्सर गांवों व छोटे कस्बों के लोग रोजगार के कारण गांव से शहर की ओर प्रवास करते हैं, जिससे शहरों में भीड़भाड़ बढ़ने लगती है। इसीलिए बैट्री से चलने वाले वाहनों की स्पीड कम होने से रोजाना होने वाली दुर्घटनाओं में भी कमी देखने को मिलेगी। भारत बड़ी मात्रा में कच्चे तेल का आयात करता है, जिसके कारण पेट्रोल व डीजल पर भी प्रभाव पड़ता है। देश में वाहनों की खरीदारी में बढ़ोतरी काफी तेजी से हो रही है, जिसके कारण दबाव पेट्रोल व डीजल पर भी पड़ रहा है। यदि ऐसा ही चलता रहा तो देश में ईधन, कोयला व खनिजों को खत्म होने में ज्यादा समय नहीं लगेगा, इसीलिए पेट्रोल व डीजल की खपत को कम करने के लिए ई-वाहनों के प्रयोग की आवश्यकता है। ई-वाहनों के कई फायदे भी हैं, जिसके कारण लोग इनको खरीदने के लिए प्रेरित हो रहे हैं। ई-वाहन का मूल्य ईंधन वाले वाहनों की अपेक्षा बहुत कम है, जिसके कारण लोगों को यह वाहन अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। ई-वाहन को चलाने के लिए कोई आयु निर्धारित नहीं की गई है जिसके कारण 18 से कम आयु के बच्चे भी इसका

लाभ उठा रहे हैं। ई-वाहन का वजन ईंधन वाले वाहन की अपेक्षा कम है। हल्के वाहन होने के कारण लड़का हो या लड़की दोनों के लिए उपयोगी है। ई-वाहन के रख-रखाव में लागत कम आती है। अक्सर हर चीज के दो पहलू होते हैं। यदि ई-वाहनों के फायदे हैं तो कुछ नुकसान भी हो सकते हैं। ई-वाहन बैट्री से चलने वाले वाहन हैं। यदि लंबी दूरी तय करनी हो तो ई-वाहनों से अभी नहीं की जा सकती क्योंकि बैट्री को चार्ज करने के लिए चार्जिंग प्वाइंट उपलब्ध नहीं है। ई-वाहन को तेज चलाने से बैट्री और स्पीड जल्दी कम होने लगती है, जो रास्ते में कभी भी धोखा दे सकती है। धीरे-धीरे ई-वाहनों के लिए इंतजाम करने के लिए सरकार रोज कोई न कोई कदम उठा रही है। हाल ही में दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल नें 'स्विच अभियान' नाम से अभियान चलाया, जिसमें ई-वाहनों के बारे में विस्तार से बताया गया। इसमें बताया गया कि ई-वाहन क्यों फायदेमंद है और आगे इससे क्या-क्या फायदे होने वाले हैं। इसमें केजरीवाल ने बताया कि ई-वाहनों की चार्जिंग के लिए हर तीन किलोमीटर की दूरी में चार्जिंग प्वाइंट बनाए जाएंगे।

दिल्ली सरकार ने दिल्ली को प्रदूषण मुक्त कराने के लिए ई-वाहन की खरीदारी के ऊपर कई फायदे भी बताए हैं, जैसे यदि कोई ई-वाहन खरीदता है तो उसे बड़ी मात्रा में सब्सिडी उपलब्ध कराई जाएगी। ई-वाहन को खरीदने के लिए किसी भी तरह का रजिस्ट्रेशन चार्ज व रोड शुल्क नहीं लगेगा। जब से सरकार ने ई-वाहन पॉलिसी जारी की तब से 6000 ई-वाहन खरीदे जा चुके हैं। देश में हर रोज पेट्रोल व डीजल के दाम आसमान छूते जा रहे हैं। यदि लोगों में ई-वाहन की खरीदारी बढ़ती है तो पेट्रोल व डीजल की मांग कम हो जाएगी और जब किसी भी चीज की मांग कम होने लगती है तो उसकी कीमत में भी गिरावट आती है। इसी कारण आने वाले भविष्य में पेट्रोल व डीजल सस्ते हो जाएंगे। फिलहाल लोग ई-वाहनों को छोटी दूरी के लिए प्रयोग कर रहे हैं क्योंकि अभी पूरी तरह से ईंधन वाले वाहनों के बराबर लाने के लिए सरकार को कई तैयारियां करनी बाकी हैं। लोगों में ई-वाहन का क्रेज बढ़ाने के लिए कई जगहों पर थोड़ी देर के लिए ई-वाहन चलाने को देना जैसी चीजें की जा रही हैं। यूलू एक बैट्री से चलने वाली साइकिल है, जिसका दिल्ली में बच्चों या बूढ़ों में कफी क्रेज बढ़ गया है। यूलू बंगलुरु की बनाई गई साइकिल है, जिसको दिल्ली के कनॉट प्लेस की तरफ काफी पसंद किया जा रहा है। कई जगह बैट्री वाली स्कूटी की डिमांड बढ़ने लगी है, बच्चे साइकिल की जगह बैट्री वाली स्कूटी पर स्कूल जाना पसंद करने लगे हैं।

रेप एक अमानवीय अपराध

● **वसुंधरा बाथम**

रेप का कोई अर्थ है? क्या इस शब्द को परिभाषित किया जा सकता है? क्या आप इसे परिभाषित कर सकते हैं? क्या कोई लेखक इसे परिभाषित कर सकता है? क्या उस दुष्कर्म पीड़ित युवती की असुरक्षा, अवसाद, खालिश, एकांत को परिभाषित किया जा सकता है? अगर हम गूगल करें तो गूगल कहता है कि बलात्कार ऐसा अपराध है जिसमें संभोग के साथ स्त्री की सहमति पर प्रश्न होता है। संभोग की भी अपनी परिभाषा इसी धारा के अतर्गत दी गई है। किसी समय लिंग का योनि में प्रवेश संभोग माना जाता था, परंतु समय के साथ इस परिभाषा में परिवर्तन किए गए। एक डॉक्टर से पूछा जाए तो रेप एक तरह का इन ह्यूमन एक्शन है, जिसमें हिंसा ही हिंसा होती है। यह एक ऐसा हादसा है जिसकी गवाह वह औरत होती है, जिसके साथ यह घिनौना और अमानवीय काम किया जाता है। समाज के लिए दुष्कर्म पीड़ित युवती किसी पर्यटन स्थल की तरह होती है, जिसे वो देख कर खुश होते हैं।

यौन हिंसा से गुजरी कोई भी लड़की नहह्न चाहती कि उसकी आत्मा के जख्मों पर समाज के सवालों की मक्खियां भिनकती रहें। उस दुष्कर्म पीड़ित युवती से पूछा जाए तो क्या कहेगी वह? मेरे ख्याल से वह अपनी पीड़ा को व्यक्त भी नहीं कर पाएगी। शायद वह कहेगी कि इस मैली आत्मा को किस डिटर्जेंट पाउडर से धोऊं? वह देह जो उसे ही प्रश्नवाचक सी नजर आ रही है। ऐसे शरीर को जो उसे प्रतिद्वंदी नजर आता है, उसे अपने साथ रखना कितना कठिन है। एक खबर याद आती है, जहां दुष्कर्म को अंजाम देने के बाद उन युवकों ने उस लुटे हुए अर्धनग्न शरीर को रोड के किनारे फेंकने के बाद एक पर्ची छोड़ी, जिसमें लिखा था–वी इंजॉय। आप इसे क्या कहेंगे? मेरे लिए तो यह समाज का वो गंदा, भद्दा चेहरा है जिसे देखने से ही मन खराब हो जाता है। यह मेरे सभ्य समाज का कलंकित चेहरा है। इन दो शब्दों के पीछे समाज की वह दुर्भावना छिपी है, जिसमें हिंसा में मनोरंजन और दुष्कर्म में सुख छुपा है। किसी के दिल से खोलना, किसी खिलौने से खेलना है क्या? जिसे इंजॉय किया जाए। मैंने किताबों में पढ़ा था कि जानवर से मनुष्य बना है, पर अखबारों में देख कर मुझे यकीन हो गया। किसी की देह से खेलना उस जानवर के लिए एंजॉयमेंट है। अगर युवती विरोध करे तो हड्डियां तोड़ दो। अपने साथ हुए दुष्कर्म को बयां न कर पाए इसलिए जुबान काट दो और अगर फिर भी विरोध करे तो गर्दन तोड़ दो। सरिया घुसा दो। सर फोड़ दो। अर्धनग्न हालत में रोड पर छोड़ दो। जिंदा जला दो, क्योंकि हम तो मनुष्य के रूप में जानवर हैं।

नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो की ओर से जारी किए गए ताजा

आंकड़ों के अनुसार भारत में 2019 में हर दिन बलात्कार के 88 मामले दर्ज किए गए। साल 2019 में देश में बलात्कार के कुल 32,033 मामले दर्ज किए गए, जिनमें से 11 फीसदी पीड़ित दलित समुदाय से हैं। एनसीआरबी की रिपोर्ट के अनुसार सबसे ज्यादा बलात्कार के मामले राजस्थान और उत्तर प्रदेश से दर्ज हुए। 2019 में राजस्थान में करीब 6,000 और उत्तर प्रदेश में 3,065 बलात्कार के मामले सामने आए। एनसीआरबी के आंकड़ों से पता चलता है कि पिछले 10 वर्षों में महिलाओं के बलात्कार का खतरा 44 फीसदी तक बढ़ गया है। संस्था के आंकड़ों के मुताबिक 2010 से 2019 के बीच पूरे भारत में कुल 3,13,289 बलात्कार के मामले दर्ज हुए हैं।

सकते, क्योंकि उनके कुछ मानवीय अधिकार हैं जिससे हम उन्हें वंचित नहीं कर सकते, परंतु क्या ऐसे जघन्य अपराध को अंजाम देने के बाद उन्हें मनुष्य भी समझा जाना चाहिए जो उनके मानवीय अधिकारों की बात कर रहे हैं? ऐसे अपराधी के लिए केवल एक दंड हो सकता है, वह है मृत्युदंड।

आखिर वह किसी जिंदगी से खेला है। उसे इसकी कड़ी सजा मिलनी ही चाहिए। परंतु हमारे समाज का एक दूसरा पहलू भी है, जो इन कानूनों का दुरुपयोग करता है और जिन स्त्रियों के साथ यह होता है जो इसे झेलती है, वह न्याय नहीं पा पाती। इसी कड़ी में झूठे सिद्ध होने पर याचिकाकर्ता को भी कड़ा दंड मिले जिससे झूठा मामला

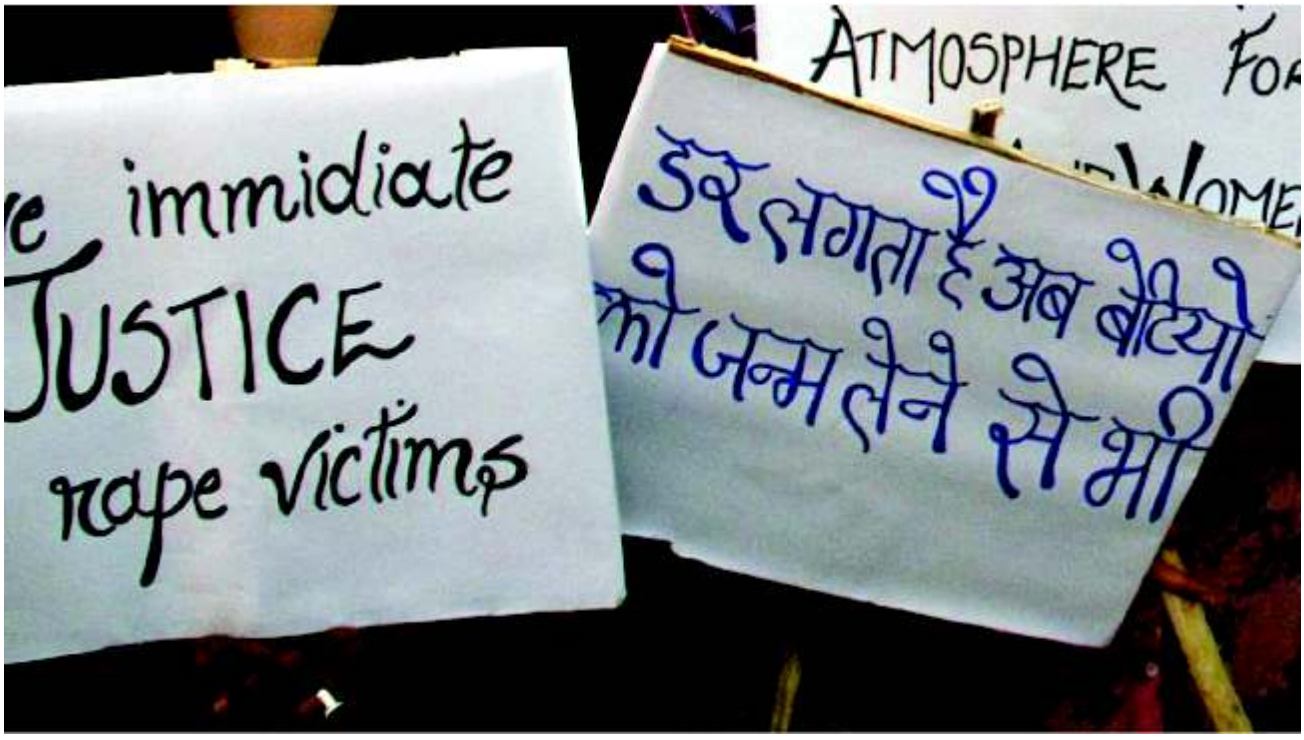

हमने अपने संविधान निर्माण के समय कई कानून दूसरे संविधान से लिए। फिर हमने रेप जैसे जघन्य अपराध के लिए क्यों कोई ऐसा कानून नहीं बनाया कि किसी स्त्री के साथ ऐसा करने से पहले उस पुरुष की रूह कांप जाए। क्या हम इतने सक्षम नहीं थे कि ऐसा कोई कानून का निर्माण कर सकें? क्यों हमारे देश की नींद तब टूटती है, जब किसी बच्ची की अस्मत लुट चुकी होती है? हमारे सभ्य समाज के कुछ ठेकेदार कहते हैं कि हम इन अपराधियों को तुरंत सजा नहीं दे

चलाने वाले पर रोक लगे और इस कानून का दुरुपयोग रोका जा सके। क्या हमारा देश कोई ऐसा कानून बना सकता है, जिससे हमारी स्त्रियां खुद को सुरक्षित महसूस कर सकें? शायद तब तक नहीं, जब तक हमारा देश इन अपराधियों के खिलाफ आवाज न उठाए, कोई ऐसे कानून की मांग न करे जिससे उन वहशी दरिंदों की रूह न कांप जाए। क्या यह संभव है? शायद हां, अगर हम सोच लें कि ऐसे अपराधियों को बख्शा न जाए।

तुम बिन जिया जाए कैसे

• विद्या शर्मा

आपको क्या लगता है? हम चार-पांच बार अपने विषय से संबंधित सामग्री याद कर सकें या न कर सकें, पर फिल्मों के गाने हमें अक्सर एक-दो बार सुनते ही शब्दशः याद हो जाते हैं। आपकी रुचि, पसंद या भावनात्मक जुड़ाव एक कारण हो सकता है। पर एक कारण मुख्य है, जो गाने आप सुन रहे हैं, उनके रीमेक का। यानी कि किसी एक गाने को, जो पहले ही आ चुका है, उसे दुबारा बनाना, जिसमें रचनात्मकता हो और आते ही लोगों के दिलों में घर कर ले। मैं गानों (पुराने) की बहुत शौकीन हूं। हां, आप भी होंगे। यह बात भी ठीक है कि कौन होगा ऐसा जिसे गाने पसंद न हों या जो सुनता न हो। चलो गाना न सही छोटी सी धुन तो सुनता ही होगा! पर संगीत से अछूता न होगा।

अगर देखा जाए तो भारत में 1902 में गौहर खान ने पहला गीत गाया था, जिसे रिकार्ड किया गया था। भारत की पहली बोलती फिल्म 'आलमआरा' 1931 में आई थी। 'आलमआरा' के बाद से बोलती फिल्मों के साथ-साथ गीत-संगीत की भी शुरुआत हुई। उस समय सबसे पहला गीत 'दे दे खुदा' के नाम पर था, जो फिल्म 'आलमआरा' में संगीतकार वजीर मोहम्मद खान द्वारा फरमाया गया था। एक तो मूक फिल्म के बाद बोलती फिल्म का उत्साह, ऊपर से एकदम नये ढंग से लयात्मक वाच्य। क्या मंजर रहा होगा तब। पहली बार गाना सुन कर लोगों में कैसा उत्साह और आश्चर्य हुआ होगा। अगर आप शुरुआती गीतों को सुनते आए हों तो आपने भी यह देखा होगा कि आज भी जो गाने फरमाये जा रहे हैं। उनका लगभग 75 फीसदी आधार पुराने गीत ही हैं।

लगभग हर साल रिलीज होने वाली प्रत्येक फिल्म में यदि चार गाने हों तो उसमे से दो गाने पुराने गानों का रीमेक होगा। बाकी एक गाने की धुन पुराने गानों में से ली गई होगी, पर बोल नए होंगे और आखिर का बचा एक गाना संगीतकार का होगा, वह भी पक्का नहीं। उदाहरण के लिए फिल्म 'शुभ मंगल ज्यादा सावधान' में कुल छः गाने हैं जिनमें से तीन पुराने गीत का रीमेक हैं। फिल्म जुड़वा-2 में कुल चार गाने हैं, जिनमें से दो पुराने गीतों का रीमेक हैं।

ऐसे ही आप कई फिल्में देख सकते हैं जिनमें कुल गानों मे से आधे पुराने गीत के रीमेक हैं। यानी कि पुराने गीतों को थोड़ा

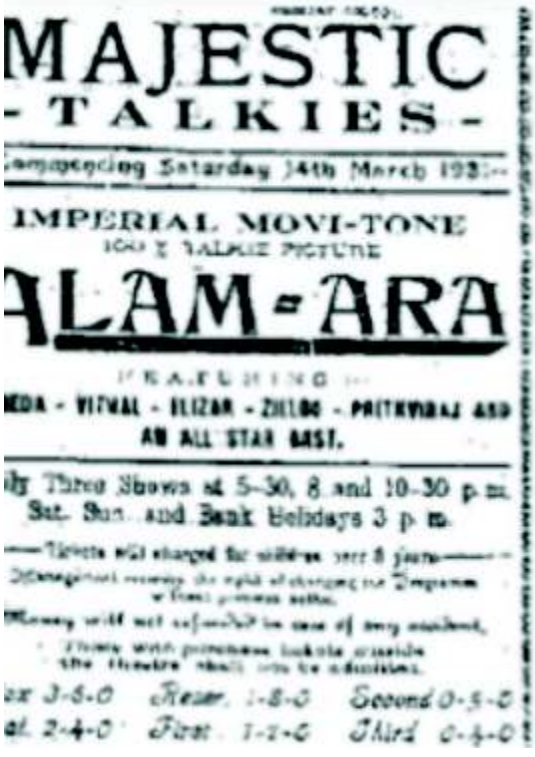
MAJESTIC
- TALKIES -
IMPERIAL MOVI-TONE
ALAM-ARA
AN ALL STAR CAST.

अलग रूप देकर उन्हें नया बनाकर परोसा जाता है, जिससे होता यह है कि जो गीत अपने जमाने में अव्वल दर्जे के माने जाते थे और जिन्हें इस जमाने के शूरवीरों ने सुना नहीं है, वो पुराने गीतों के नए रूप पर ठुमकने लगते हैं। यह बात केवल फिल्मी गीतकारों पर ही लागू नहीं होती बल्कि वे संगीतकार जो अपनी एल्बम बनाते हैं उन पर भी लागू होती है। उदाहरण के लिए जैसे जुबीन नौटियाल और दर्शन रावल। ये दोनों ही काफी लोकप्रिय हैं आज के समय में। इनके भी कई गाने पुराने गीतों के ही रीमेक हैं जैसे–किन्ना सोणा, हैय्या हो, किसी से प्यार हो जाए (जुबीन नौटियाल)। चोघाड़ा, हवा बनके, एक लडकी को देखा तो (दर्शन रावल)।

अगर 90 के दशक या उससे पहले के गानों और उसके बाद के गानों की तुलना करें तो पहला ध्यान उनके शब्दों, भाषा शैलियों पर रहता है। भाषा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है संगीत में। यहां भाषा से अभिप्राय अलग–अलग भाषा यानी कि हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी या पंजाबी से नहीं बल्कि गानों में प्रयुक्त होने वाले शब्दों से है। बात अच्छी है या बुरी है। ज्यादा महत्वपूर्ण होता है, बात किस लहजे से कही जाती है। उसी तरह जैसे अगर आप फिल्म आर. राजकुमार का 'साडी के फॉल सा' गाना सुनें और फिर फिल्म 'मासूम' का 'हुजूर इस कदर भी न' गीत सुनें तो आप खुद ही भाषा में फर्क देखेंगे। दोनों में ही लड़की और उसकी पहनी साड़ी पर टिप्पणी हो रही है, पर बोलने का तरीका दोनों का ही अलग है। जो घुंघरू गाना अरिजीत सिंह ने 2019 में आई फिल्म 'वार' में गाया है, सबसे पहले यह 1969 में माला द्वारा गाया गया था। 1969 के बाद इसके छः रीमेक आये और अरिजीत सिंह द्वारा गाया गया गाना इसका आठवां रीमेक है। जिस इंजन की सीटी पर आज सबका मन डोलता है, 1981 और 1992 में उसमें मन डोला करता था।

कुछ गीत हमेशा अमर रहते हैं। सदा जीवंत रहते हैं। जब कभी कोई भी गाने की स्थिति बने तो सबसे पहले यही अमर गीत याद आते हैं। जैसे शादियों का सबसे चर्चित गीत 'आज मेरे यार की शादी है' दोस्ती के लिए 'यारा तेरी यारी को' जिसने नहाते वक्त 'ठंडे–ठंडे पानी से नहाना चाहिए' नहीं गुनगुनाया, उसने नहाया ही नहीं। शादियों में विदाई के वक्त लगने वाला गाना आज भी 'धड़कन' फिल्म का धड़कन गाना ही सबसे प्रिय है। कुछ भाभियों का तो सपना होता है कि वह अपने देवर की शादी में 'हम आपके हैं कौन' के गीत 'लो चली मैं' पर डांस करें। साहित्य समाज का दर्पण होता है बल्कि उससे कहीं ज्यादा होता है। साहित्य की ही विधा है लोकगीत और गीत–संगीत। जो कुछ भी हमारे समाज में घटित होता है, अच्छा–बुरा, सच–झूठ, तार्किक–अतार्किक, वह सब साहित्य रचता है, जो सबसे अछूता रह जाता है उस तक साहित्य ही पहुंचता है। उसी प्रकार गानों में जिस प्रकार के शब्दों का प्रयोग होता है, यह उस समय में प्रयोग होने वाले शब्द होते हैं, जब वह गाना रिलीज होने वाला होता है।

आज जब किसी भी पुराने गीत को रीमेक किया जाता है, तो बस यही सवाल आता है मन में कि क्या संगीतकार खुद नए गानों के निर्माण में असमर्थ हो गए हैं या वह छोटा रास्ता अपना कर जल्दी और अधिक लोकप्रिय होना चाहते हैं। क्या उनकी कुछ नया सोचने और बनाने की शक्ति खत्म हो गई है? हां, गानों का रीमेक बनाना, नए तरीके से पुराने गीतों को प्रस्तुत करना और लोकप्रिय बनाने में भी एक रचनात्मकता है। पर जब शुरुआत में संगीतकार मेहनत करते थे तो कई दिन लग जाते थे एक गीत लिखने में। उनकी मेहनत का फल आज युवा गायक खा रहे हैं। बस तरीका बदल गया है। आज ज्यादातर नए गायकों की दशा ऐसी हो गई है कि उनकी दशा का वर्णन भी पुराने गीत 'तुम बिन जिया जाए कैसे? कैसे जिया जाए तुम बिन?' के जरिए ही किया जा सकता है।

संगीत : नए का जमाना, पर पुराना तो पुराना है

● **गौतम कुमार झा**

हम जिस दौर में जी रहे हैं वो आधुनिक दौर है। इस दौर में अलग-अलग तरह के फैशन की भरमार है, जिसमें एक संगीत भी है। संगीत के बिना हम सभी का जीवन अधूरा है। चाय की टपरी से लेकर बड़े-बड़े मॉल तक में संगीत का बजना बताता है कि संगीत में कितनी ताकत है। भारतीय सिनेमा में संगीत का हर दशक में प्रयोग किया गया है। इनमें से कुछ प्रयोगों ने 'ये चाँद सा रोशन चेहरा' जैसे गाने दिए तो कुछ ने 'चुम्मा-चुम्मा' जैसे आइटम नंबरों को जन्म दिया है।

भारत में संगीत की परंपरा आदिकालीन समय से ही रही है। हिन्दुओं के लगभग सभी देवी-देवताओं के पास अपना एक अलग तरह का संगीत यंत्र है। विष्णु के पास शंख है तो शिव के पास डमरू है। नारद मुनि और सरस्वती के पास वीणा है तो भगवान श्रीकृष्ण के पास बांसुरी। इसीलिए संगीत को पवित्र भी माना जाता रहा है, परंतु अब शास्त्रीय संगीत में पवित्रता की जगह रॉक म्यूजिक, रैप, रोमांटिक संगीतों ने ले ली है। संगीत को लोग सिर्फ मनोरजंन के लिए नहीं सुनते बल्कि संगीत से हमारा मन और मस्तिष्क शांत और स्वस्थ हो सकता है। इसीलिए कभी-कभी लोग संगीत को अपने मन को शांत करने के लिए भी सुनना पसंद करते हैं। आजकल के युवा जोशीले, रोमांचक गीत-संगीत सुनना पसंद करते हैं।

अगर हम संगीत की बात करते हैं तो लोगों के जेहन में ज्यादातर रोमांटिक गीत आते हैं। चाहे हिन्दी भाषा हो या फिर पंजाबी भाषा के गीत, हम पाते हैं कि रोमांटिक गानों की संख्या दूसरे गानों के मुताबिक ज्यादा रही है। हम संगीत को प्रेम बांटने या फिर प्रेम दर्शाने का माध्यम भी मान सकते हैं।

अगर हम संगीत के बदलते स्वरूप पर नजर डालें तो हम पाएंगे कि आजकल का संगीत 'प्रेम', 'टूटे-दिल' तथा 'दुख' पर ज्यादा बनाया जाने लगा है। 90 के दशक के गीतों में भक्ति, आराधना और प्रेम ज्यादा देखने को मिलता था। पहले के गीत-संगीत का अंतराल ज्यादा लम्बा होता था, लेकिन वर्तमान के गानों में बोल जल्दी ही शुरू हो जाते हैं, क्योंकि आज का युवा गानों में ट्यून से ज्यादा शब्दों पर ध्यान देता है, जिसे लिरिक्स कहा जाता है।

संगीत का दौर इतनी तेजी से बदल रहा है कि उसके लिए बजाए जाने वाले वाद्य यंत्र जैसे तबला, बांसुरी के बजाय लोग अब गिटार और पियानो ले रहे हैं। अब लोगों को किशोर कुमार के शांत गानों की बजाय यो-यो हनी सिंह और बादशाह के रैप पसंद आते हैं। बदलते संगीत के दौर में सिर्फ इतना ही नहीं कि संगीत के सिर्फ गायक बदल रहे हैं। संगीत को गाने-दर्शाने का भी ढंग बदल रहा है, जैसे पहले गायक सिर्फ गाना गाते थे और पर्दे के पीछे रहते थे, लेकिन अब समय बदलने के साथ पर्दे के पीछे रहने वाले गायकों को लोग स्क्रीन पर देखना, उन्हें थिरकते हुए देखना पसंद करते हैं। पहले का संगीत शादी समारोह और पारिवारिक दृश्यों को ध्यान में रखकर बनाया जाता था, जिससे भारतीयता की अलग झलक देखने को मिलती थी। 'दीदी तेरा देवर दीवाना', 'मेहंदी सजाकर रखना' और 'छोटे-छोटे भाइयों के बड़े भैया' जैसे गीतों में भारतीय संस्कृति का अद्‌भुत संगम दिखाई पड़ता था। लेकिन कहते हैं कि समय के साथ बदलाव प्रकृति का नियम है। बॉलीवुड को हटकर संगीत देने वाले अमित त्रिवेदी ने बताया

कि 'गाने हिट हो जाने के बाद भले ही लोग उनकी वाहवाही करते हों लेकिन रिलीज से पहले निर्माता निर्देशकों को इस तरह के अलग-थलग संगीत के लिए राजी करना आसान नहीं होता। यह एक बेहद कठिन रास्ता है।'

उन्होंने कहा कि 'कुछ तो बदलते समाज के साथ संगीत बदलता है तो कुछ बदलते संगीत के साथ समाज की पसंद बदलती है। लेकिन सच्चा कलाकार वही करता है, जो उसका दिल कहता है। उनके अनुसार इस समय दुनिया भर के संगीत को सुनने तक हर किसी की पहुंच है। तकनीक ने आसमान की ऊचाइयां छू रखी हैं और लोग कुछ नया सुनने के लिए हर पल तैयार हैं। ऐसे में यह भारतीय फिल्म संगीत का सबसे रोचक दौर है। बेशक तकनीकी विकास कितना भी हुआ हो, लेकिन हमने अपने संगीत की वो झलक खो दी है।

आजकल के गायक-गायिकाओं ने अपना और संगीत का एक अलग अंदाज कायम किया है। यूरोपियन वाद्य यंत्रों को भारतीय तबले, बांसुरी के साथ अनोखे सुर और ताल में बैठाने का प्रयास किया है। नये सुरों को नई माला में पिरोया है। जिसमें युवा वर्ग थिरकना और अपनी कूल पार्टी में 'पार्टी

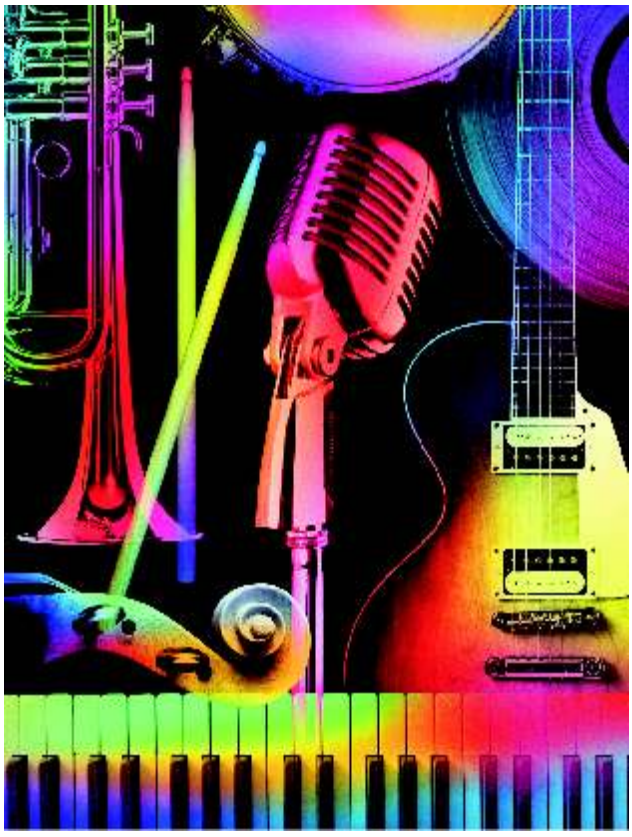

फुल नाइट' जैसे गानों पर झूमना पसंद करता है। आज के सुर और पुराने गानों के सुर में जमीन-आसमान का अन्तर आया है, लेकिन आज भी लोग गाने के बिना नहीं रह सकते और न पहले रह सकते थे। बेशक नए गाने आ गए हों, लेकिन पुराने गानों की जगह दिल में आज भी है और हमेशा रहेगी।

प्रतीक्षा

• **विद्या शर्मा**

कई बरस मेरे
यही सोचते-सोचते व्यतीत हो गए
कि कभी तुम्हारी सारी संवेदनाएं
सारी भावनाएं, सारा प्रेम और
तुम्हारी सारी शंकाएं
तुम मुझे अभिव्यक्त करोगे
यह एहसास दिलाओगे और कहोगे कि
जो तुमने सोचा था
और जो मैंने चाहा था
यह वही सत्य है
मैं समर्पित करता हूं खुद को
और यह आशा रखता हूं कि
जितना भी कष्ट तुमने भोगा और
जितना भी वियोग तुमने सहा
मैं उसे चुका सकूं।

थिरकते पांव

• श्रुति गोयल

किरदार

चैताली (मुख्य किरदार, कृष्ण देसाई एवं रेखा की पुत्री)

गौरिका (चैताली की दोस्त)

अम्मा (चैताली की अम्मा)

निर्मला देवी (लोहारन)

उमा (छोटी बच्ची)

रेखा (चैताली की मां)

दृश्य एक

झील के किनारे कलकल बहते पानी की आवाज।

(चैताली मन ही मन कुछ गुनगुनाती और पत्तों से खेलती हुई)

गौरिका : केवल गुनगुनाती रहोगी या कुछ कहोगी भी? तुम्हारी चुप्पी से अब मेरा धीरज निर्बल हो रहा है। कुछ कहो चैताली।

चैताली : मैंने ऐसा क्या आसमान मांगा था पिताजी से, जो वो दे भी न सके? क्या ही मूल्य है उनकी जमीन व खजाने का, जो हर वक्त जंजीरों से जकड़ा रहे?

गौरिका : ऐसा क्या मांग आई हो दादा से जो उनके नाम और शोहरत के परे हो? दादा जिला कलेक्टर हैं, चाहें तो क्या नहीं कर सकते। इतने ऐशो आराम के बाद भी क्या अछूता है तुमसे?

चैताली : (हिचकिचाते हुए) माई! मैंने माई को कभी नहीं देखा। केवल किस्से सुने उनकी अदाओं और खूबसूरती के। अम्मा सुनाती हैं उनकी खूबसूरती। ऐसा लगता है कि जैसे माई की तस्वीर उनकी आंखों मे लगी हो। सुरमई गहरी काली आंखें, तीखी नाक, गुलाबी होंठ, काले लंबे बाल और सिल्क की सफेद साड़ी। ये चित्रण जितना मंत्रमुग्ध करने वाला है उतना ही बे-रंग भी।

गौरिका : और तुम ऐसा क्यो सोचती हो?

चैताली : तुम्ही बताओ, तुम खोज पा रही हो श्रृंगार का एक आभूषण माई की तस्वीर में? माई तुम्हारे सामने खड़ी है श्रृंगार रहित। स्त्री आभूषणों से लड़ी न हो पर सजी तो हो सकती है। क्या माई सजती-संवरती न थी? इतना क्या मुश्किल है उस स्त्री को रंगों में देखना? केवल उससे मिलना मात्र ही मेरे अनेक सवालों पर पूर्ण विराम है, परंतु पिताजी हर बार किसी नई बात में मुझे उलझा कर बात टाल देते हैं। पर, आज तो मैं अड़ी रही। उनके सौ बार नकारने के बावजूद। माई से तो मैं मिलूंगी ही।

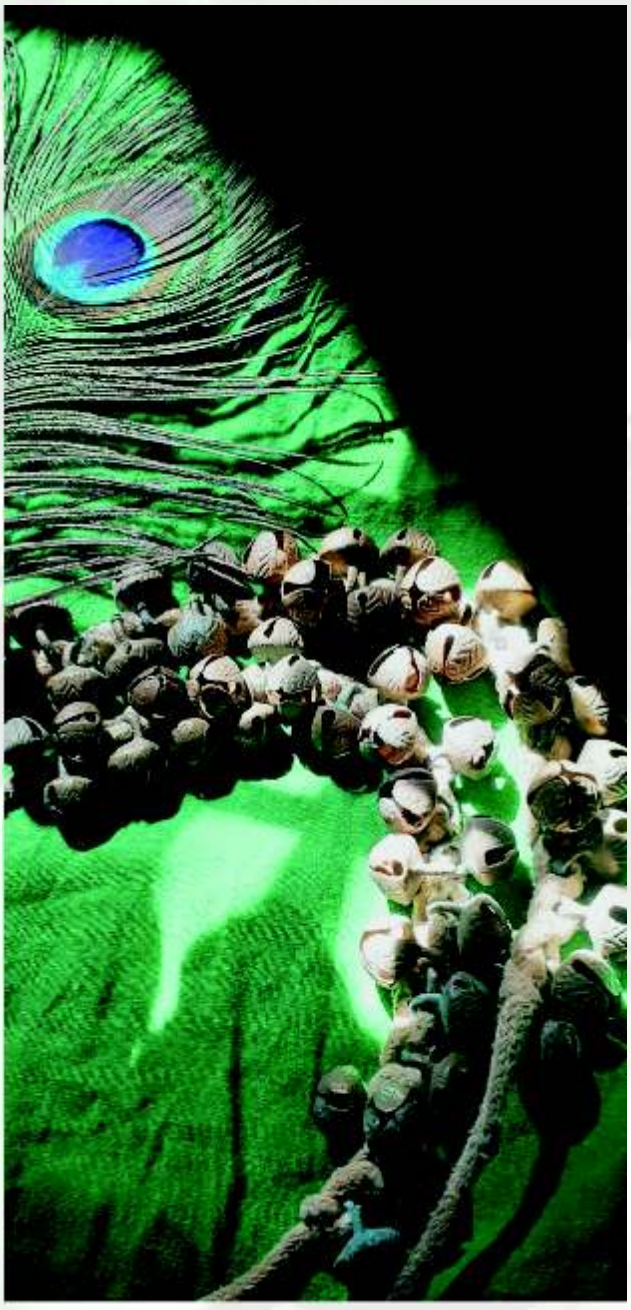

गौरिका : क्या तुम्हें लगता है कि बिना दादा के माई को ढूंढ पाना मुमकिन है?

चैताली : ढूंढने पर तो भगवान मिल जाएं, माई तो मनुष्य हैं।

दृश्य दो

(चैताली और गौरिका घर को जाती हैं, माई से संबंधित जानकारी जुटाने)

गौरिका : माई के बारे में जानकारी केवल तुम्हारी कल्पनाओं के घर में कुछ शेष नहीं है और कितना समय इस कमरे में बर्बाद करोगी? मेरी मानो तो दादा से थोड़ा कुछ पूछ आओ।

चैताली : अरे हां, पिताजी का कमरा नहीं टटोला है। वहीं कुछ मिलेगा। कभी-कभी तुम ठीक बात कह देती हो।

(दोनों कमरे में फाइलों के ढेर को देख कर कांप जाती हैं)

गौरिका : इस भंडार में तिनका ढूंढने जैसा है। यह साहस है या बेवकूफी?

चैताली : माई को ढूंढना मेरी जिज्ञासा और ममता है, जिसके लिए साहस और बेवकूफी दोनों ही आधे-आधे लगेंगे।

(बीते सालों की फाइलों के ढेर में दबी चैताली की नजर जंग लगी घुंघरू पर पड़ी, उसे बाहर खींचते हुए वो बोली)

चैताली : (आशाहीन स्वर में) ढेर से मिले भी तो क्या, घुंघरू। तस्वीर मिलती, कोई कागज ही मिल जाता, इनका मैं क्या करूंगी, क्या यह माई से मिलवा देंगे?

(नि:संदेह अब चैताली को अपनी कही बात पर अफसोस था कि माई तो केवल मनुष्य ही हैं। उसने जरूर ही अपनी कही बात को पलट दिया होगा कि भगवान का मिलना फिर भी स्वाभाविक है, मनुष्य का मिलना असंभव)

गौरिका : क्या पता घुंघरू माई के हों?

चैताली : हां, एक आभूषण वो भी नर्तकी का, जो समाज उस स्त्री को हार या मांग टीके में नहीं देखता वो घुंघरू में देख सकने की हिम्मत रखता है?

गौरिका : वो समाज उस स्त्री के कदमों में था तभी उसका अस्तित्व आज मौन है। चैताली ये लोग उसके कदम थामने पर तुले थे और माई संबल थीं।

(चैताली गलत का अंदाजा लगा चुकी थीं, उसके जीवन में शायद ही कोई स्त्री ऐसी रही होगी जो पुरुष प्रधानता के अधीन न हो)

दृश्य तीन

(चैताली दौड़कर बरामदे में खाट पर लेटी अम्मा के पास पहुंची)

चैताली : (हांफते हुए) अम्मा उठो। तुम उस तस्वीर से कहीं अधिक जानती हो, यह बात पता है मुझे। बस कभी उससे अधिक चित्रित नहीं करती हो। क्यों छुपाती हो मुझसे?

(अम्मा हलकी आंख खोले चैताली के हाथ में सिमटे घुंघरू तक रही थीं, तुरंत ही उन्हें ख्याल आया कि यह पूछना घुंघरू उसे मिले कहां से, एक महत्वपूर्ण सवाल है)

(झूठी नींद की अंगड़ाई लेते हुए अम्मा ने पूछा)

अम्मा : ये घुंघरू किसके हैं? कहां से लाई हो इन्हें? अच्छे घर की लड़कियां घुंघरू लिए नहीं घूमतीं। तुरंत घर के बाहर जाओ और इन्हे फेंक आओ। तुम्हारी माई घुंघरू फेंक आतीं तो घर-गृहस्थी वाली इज्जतदार स्त्री होतीं।

(यह बात सुनते ही मानो चैताली के मन को धक्का सा लग गया हो। घुंघरू हाथ में लिए वो गांव की ओर भागी)

सच ही बात है। आस और सहानुभूति दोनों ही भ्रम भांति हैं।

दृश्य चार

(एक बरगद के पेड़ के नीचे चैताली जाकर रुक गई और वहीं बैठ गई। उसकी आंख लग गई)

तभी गांव की एक लोहारिन उसके पास आकर बैठ जाती है और इतने में ही वो घबराकर उठ जाती है।

चैताली : चाची तुम, तुमने तो मेरी जान ही निकाल दी। यहां अचानक से कब आई तुम?

निर्मला देवी (लोहारिन) : अभी कुछ देर पहले! तुम्हारे हाथ में यह घुंघरू देख कर तुम्हारी माई की याद आ गई। जब वो घुंघरू पहनकर निकलती थीं, पूरे गांव की नजर उस पर टिकी होती थी। चाहे वे दूर से निंदा के पुल क्यों न बांध रहे हों।

चैताली : क्या माई नाचती थीं? आप और भी कुछ जानती हैं उनके बारे में? वो कैसी दिखती थीं और कहां चली गई?

(इतना सुनकर निर्मला देवी मुस्कुराने लगीं और फिर चैताली का हाथ अपने हाथ में रखकर सहलाने लगीं)

निर्मला देवी (लोहारिन) : रेखा मेरी सहेली थी। हमने बचपन से सब साथ किया। उसकी रुचि विभिन्न शास्त्रीय नृत्य कलाएं सीखने में थी। जैसे-जैसे हमारी उमर बढ़ी, उसकी रुचि भी नृत्य कला में बढ़ती गई। दूसरी ओर उसका रूप

आकर्षित करने वाला था। एक बार जो उसे नृत्य करते देख ले, मन मोहित हो जाए। धीरे-धीरे रेखा ने गांव की मुजरा मंडली की नृतिकाओं को छुप-छुप के देखना शुरू कर दिया और वो उनसे इतनी प्रभावित हुई कि उनकी मडंली के साथ जा जुड़ी। हालांकि, उसके घर वाले को उसका न तो नाचना पसंद था न ही उसका सजना-संवरना उसे अच्छा लगता था। ऐसे लोग मानते हैं कि स्त्री एक फूल समान है, जैसे ही खिल जाए उसे तोड़कर गुलदस्ते में बांध दो। कुछ महीनों तक सबसे छुप-छुप कर वह मंडली में जाती रही। उसके मंडली से जुड़ते ही मंडली में तो रौनक हो उठी। समाज तो निंदा करता रहा, लेकिन दर्शकों की संख्या इससे कहीं अधिक थी। दर्शकों में से ही कुछ निंदा करने वाले ऐसे भी थे जो पराई स्त्री के नृत्य की प्रशंसा करते और अपने घर में यदि कोई स्त्री घुंघरू भी छू ले तो अनर्थ।

रेखा ज्यादा दिनों तक लोगों की नजरों में आने से बच नहीं पाई। कई दिनों तक तुम्हारी माई का पीछा करते हुए तुम्हारे पिता जो उस समय उसके पड़ोसी भी थे कृष्ण देसाई। रोज मंडली के आयोजनों में जाते और रेखा को नृत्य करते हुए देखते। आधे गांव के युवकों के समान ही देसाई भी रेखा के प्रेम में मुग्ध हो चुके थे। यह इकलौता मौका था जब रेखा जैसी स्त्री देसाई जैसे पुरुष का विवाह प्रस्ताव स्वीकार करने पर बाध्य होती। देसाई ने अपने स्वभाव के बिल्कुल अनुरूप ही वह कदम उठाया। अगले ही दिन रेखा के घर जा पहुंचा और दादा को सब बता दिया जैसे कि इतना काफी नहीं था। इसलिए दादा का क्रोध जरा भी ठंडा पड़े उससे पहले ही रेखा का हाथ मांग लिया। जाहिर है, एक पुरुष होने के कारण उससे यह प्रश्न पूछना कि वह किसी ऐसे संगठन का दर्शक क्यों है, व्यर्थ है। रेखा की यह खासियत थी कि वह मुजरे से समस्त समाज के मुंह पर तमाचा मारने में सक्षम थी। लोग भी निरे बेवकूफ तमाचा खाने जरूर जाते थे।

देसाई को लगा रेखा को पत्नी बना लेने से समाज उसे देखेगा और लोग उससे ईर्ष्या करेंगे, लेकिन रेखा किसी आम पुरुष की बस की बात न थी। उसका स्वतंत्र स्वभाव देसाई को दबा देता था, जिसके कारण वह खुद रेखा से ईर्ष्या करने लगा। बेचारा मर्द कुछ बोल भी न पाता था। कई वर्ष बीत गए। तुम्हारे होने के समय के अलावा देसाई कभी रेखा को मंडली में जाने से रोक न पाया। रेखा तुम्हारी परवरिश में कोई कमी नहीं छोड़ती थी। सहसा एक दिन उसने रेखा के घुंघरू अपने कमरे में पड़े फाइलों के भंडार के बीच छुपा कर कमरे में ताला डाल दिया। नए घुंघरू खरीदने के लिए पैसे वह लाती कहां से? उसकी जीवन पूंजी केवल उसके घुंघरू और तुम थी। घुंघरू देसाई छीन चुका था, लेकिन रेखा तुम्हें छोड़ने वाली नहीं थी। देसाई को लगता था तुम रेखा की संगत में रहकर उसी के नक्शे कदम पर चलोगी। देसाई तुम्हें कभी मंडली में नहीं देख सकता था। उसने कठोरता से रेखा पर अत्याचार करने शुरू कर दिए। रेखा जो कभी साज-श्रृंगार पर इतना ध्यान ही नहीं देती थी, अपने जख्मों को छुपाने के लिए कभी बड़ी लाल बिंदी तो कभी गाढ़ी लिपस्टिक लगाती। शादी के इतने वर्षों बाद मैंने उसे रोते देखा, पहली बार। खुद के लिए नहीं तुम्हारे लिए। तुम्हें छोड़ना नहीं चाहती थी, पर देसाई के अत्याचारों को सहने की क्षमता भी नहीं बची थी उसमें। सब छोड़कर रेखा पास के गांव में रहने चली गई।

(चैताली सुबक-सुबक कर रो रही थी। एक ख्याल उसके मस्तिष्क में घर कर गया कि स्त्री का जीवन कठोर है। तमाम संघर्षों के बाद भी ऐसा क्या है, जिसे वह अपना कह सके। उसका न तो शौक अपना, न घर परिवार अपना, न नर)

चैताली ने आंसू पोंछे और पूछा-

चैताली : क्या माई अभी उसी गांव में है? मुझे माई का पता बताओगी?

निर्मला देवी (लोहारिन) : क्यों नहीं, अभी कुछ दिन पहले ही उसकी खबर सुनी थी। पास वाले चौत गांव में सिलाई-कढ़ाई के काम में लगी हुई है। तुम उससे मिल तो आओ। लेकिन उस रास्ते जाना कठिन और ठोकर भरा है। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे कदम तुम्हें मुड़ने न दें। हर स्त्री रेखा नहीं है।

चैताली : अवश्य ही हर स्त्री रेखा नहीं है, लेकिन हर स्त्री का जीवन एक समान है, संघर्षपूर्ण। यदि मैं भी रेखा बनी तो सारी स्त्रियां उत्पीड़न से ही मारी जाएंगी। हर स्त्री दूसरे से अधिक कठोर है, यह समाज को स्वीकार करना होगा।

निर्मला देवी (लोहारिन) : तुम रेखा की पुत्री हो। यदि आज रेखा मंडली में होती तो कई सशक्त चैताली गांव के हर घर में घुंघरू बांधकर खुल कर थिरकतीं।

दृश्य पांच

(चैताली बिना समय व्यर्थ किए घुंघरू पहने पास के गांव की ओर दौड़ी चली जाती है। एक ही क्षण में उसे घर में मिल रहे आराम से नफरत होने लगी। उसके पैर में बंधे घुंघरू से मानो सारी जंजीरें खुलकर टूट गई हों। अपनी माई की तरह चैताली के घुंघरू फिर समाज को ललकार रहे थे। आज रेखा के घुंघरू कितने सालों बाद खुलकर चीखे थे)

सूरज ढलने लगा था और चैताली गांव में पहुंच चुकी थी। रात्रि से पूर्व रेखा को ढूंढना महत्वपूर्ण था। कितने लोगों से पूछ चुकी थी, लेकिन रेखा का कोई पता नहीं था। थक हार कर वह एक मुंडेरी पर जा बैठी तभी एक छोटी लड़की कपड़ों में लिपटे घुंघरू लिए उसके पास आकर रुकी और जिज्ञासा से पूछा।

बच्ची : तुम भी सीखना चाहती हो?

चैताली : (मुस्कुराते हुए) हां, तुम सिखाओगी मुझे?

बच्ची : मैं नहीं सिखाती। तुम कहो तो मैं ले चलूं तुम्हें अपने साथ, लेकिन तुम और किसी को मत बताना, नहीं तो मास्टरनी जी किसी को नहीं सिखाएंगी।

(चैताली के मन में आशाओं के मानो पुल बंध गए हों, क्या पता मास्टरनी ही उसकी माई हो। क्या पता मास्टरनी ही उसकी माई हो)

चैताली तैयार हो गई और दोनों दुकान की तरफ बढ़े। दिक्कत केवल इतनी सी थी कि चैताली ने आज तक अपनी माई को देखा नहीं था। वह उसे पहचानेगी कैसे? क्या वह उससे पूछेगी कि वह इसके इस नाम से परिचित है या नहीं या वह किसी और सिलाई वाली को जानती है, शायद। इस समय सिर्फ भावनाएं ही संभावनाएं हैं।

दृश्य छह

(दोनों दुकान तक पहुंचे, बच्ची ने आवाज लगाई)

बच्ची : मास्टरनी जी, देखिए मैं आपके लिए क्या लाई हूं?

मास्टरनी : क्या ले आई हो उमा और आज इतनी देरी कैसे कर दी? पर्दे को धीरे से पीछे करते हुए मास्टरनी बाहर आई और चैताली उसे देखती ही रह गई।

चैताली : (आत्म संवाद) इतनी खूबसूरत आज भी। अम्मा की चित्रित, माई से बिल्कुल विपरीत। तीखी धार जैसी काली आंखें, गुलाबी गाल, नाक में छोटी सी नथ, लाल पंखुड़ी जैसे होंठ, लाल सूती साड़ी, हाथ में दो सुनहरे चमकते कंगन। उसके आभूषण से अधिक तेज उसके अस्तित्व में झलक रहा था, जैसे अभी कुछ बोले और सब शीतल, शांत। अगर यह उसकी माई नहीं तो कौन?

मास्टरनी : बेटा कौन हो तुम? उमा कहती है, तुम नृत्य सीखने आई हो (चैताली ने अपने ख्याल समेटते हुए उसकी तरफ देखा और घबराहट में बोल पड़ी)

चैताली : माई...! मैं याद हूं तुम्हें?

(रेखा स्तब्ध, मूक, अचंभित उसे निहारे जा रही थी। उसे यकीन न हुआ कि उसकी चैताली इतनी बड़ी हो गई है। आखिरी बार जब उसके साथ थी तब वह चलना सीख रही थी)

रेखा : (सुबकते हुए) चैताली तुम कितनी बड़ी हो गई हो और कितनी सुंदर। कोई देखे तो देखता रहे। तुम्हें देखकर ऐसा लगता है जैसे खुद से ही बात कर रही हूं।

(रेखा उसे गले लगाए-लगाए सुबकते जा रही थी, अचानक उसका पैर चैताली के पैर से टकराया और घुंघरू की ध्वनि से उसके मन में शीतल हवाएं चलने लगीं। पिछले क्षण उसके जीवन में केवल कपड़ों की करतनें थीं और अगले ही क्षण में हाथ में पूरी उसकी जीवन पूंजी)

(पर्दा गिरता है)

जिंदगी के फलसफे की व्याख्या करता 'अक्टूबर जंक्शन'

• **शिल्पी**

कई बार हम किसी से प्रेम करते हैं लेकिन हमें पता ही नहीं होता है कि हम उनसे प्यार करते हैं। उनकी मौजूदगी में सुकून मिलता है तो उनका न होना बेचैन करता है। कुछ ऐसी ही कहानी है दिव्य प्रकाश दुबे द्वारा लिखित उपन्यास 'अक्टूबर जंक्शन' की। यह किताब 2017 के 'दैनिक जागरण' की बेस्ट सेलर सूची में शामिल है। हमारी दो जिंदगियां होती हैं। एक वो जो हम जीते हैं, दूसरी वो जो हम जीना चाहते हैं। यह उपन्यास उसी दूसरी जिंदगी की कहानी है।

'अक्टूबर जंक्शन' एक ऐसा उपन्यास है जो सुदीप यादव और चित्र पाठक की अनोखी प्रेम कहानी के साथ रिश्तों को और सच व सपने के बीच की खाली जगह को समझने एवं व्याख्या करने की कोशिश करता है। 'अक्टूबर जंक्शन' शुरू में थोड़ा सा उबाता है, लेकिन धीरे-धीरे आप इस किताब के साथ बंधने लगते हैं। यह उपन्यास आपको खुद में जोड़ लेता है। इस उपन्यास में हर पल कुछ छूटता जा रहा है, जिसे रोकना है लेकिन यह मुमकिन नहीं है, न ही उपन्यास में और न असल जिंदगी में।

उपन्यास के नायक सुदीप और चित्र की पहली मुलाकात बनारस के अस्सी घाट पर होती है। बनारस शहर सच और सपने के बीच में कहीं बसता है। यहां कोई नहीं समझ सकता कि सच क्या है, और सपना क्या है?कोई सच ढूंढने आता है तो कोई सपना भूलने, लेकिन बनारस एक ढीठ शहर है। यह लोगों के सच को सपनों में बदल देता है और सपनों को सच की तरह दिखाने लगता है। सुदीप और चित्र दस साल में दस दिन और सिर्फ 10 अक्टूबर को मिलते हैं यानी कि एक साल में बस एक दिन। सुदीप यादव केवल 12वीं तक पढ़ा है। उसने आगे की पढ़ाई और घर दोनों छोड़ दिया था, लेकिन उसने बहुत जल्दी काफी नाम कमा लिया था। वो बहुत ही कम उम्र में करोड़पति बन गया।

आज वो 'बुक मॉय ट्रिप' कंपनी का मालिक है। सोशल मीडिया पर उसके लाखों फालोवर्स थे। वह पेज थ्री सेलिब्रिटी है। आए दिन अखबार में सुदीप के बारे में कुछ न कुछ मसाला होता ही है। वो आज बनारस आया है ताकि शांत दिमाग से अपनी जिंदगी का एक सबसे महत्वपूर्ण फैसला ले सके। वो अपनी कंपनी को दुनिया की बेस्ट कंपनी बनाना चाहता था, जिसके लिए उसे अपनी कंपनी के कुछ शेयर बेचने पड़ रहे थे। इससे उसका मालिकाना हक घट जाएगा। अपनी ही ड्रीम कंपनी की डोर किसी दूसरे के हाथों में देना वास्तव में एक कठिन निर्णय है। इसी का फैसला लेने वो सच और सपनों के बीच बसे शहर बनारस पहुंचता है। वो

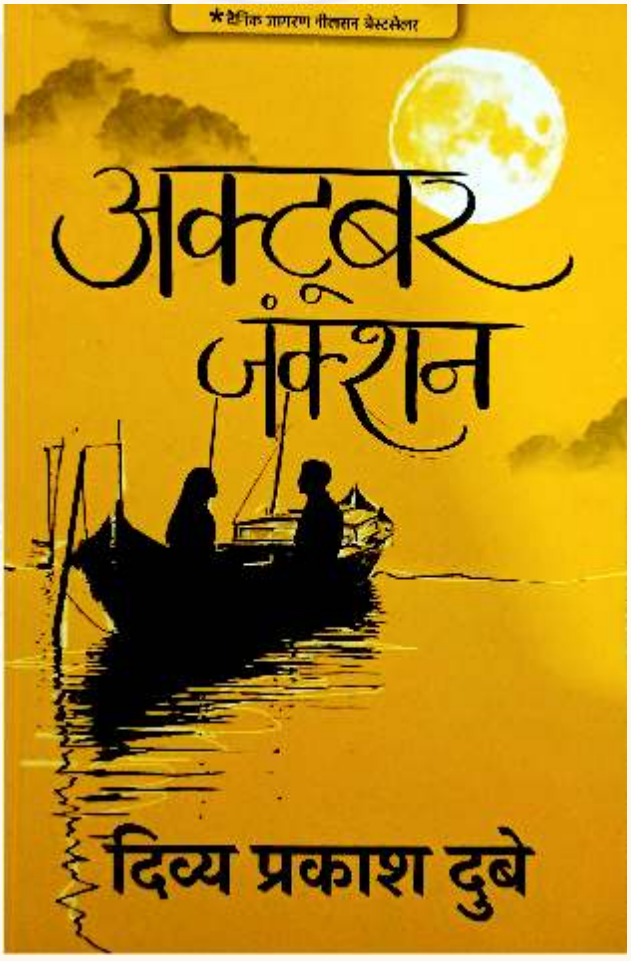

25 साल की उम्र में इस दौड़-भाग और फेम से भरी जिंदगी से थककर सुस्ताना चाहता है। अपनी जिंदगी थोड़ी अपने लिए बिताना चाहता है।

अस्सी घाट के पास पिज्जेरिया कैफे में अगर उस दिन भीड़ न होती तो शायद सुदीप और चित्र एक दूसरे से कभी नहीं मिलते। चित्र पाठक 26 साल की एक तलाकशुदा लेखिका थी। वो इस सपने के साथ उपन्यास लिख रही थी कि उपन्यास से वह खूब नाम और शोहरत कमाएगी, पेज थ्री सेलिब्रिटी बनेगी। इतना नेम एंड फेम कमाएगी कि कोई उसे नजरअंदाज न कर सके। सुदीप के पास दौलत है, शोहरत है, दुनिया की सारी चीजें हैं, इसलिए परेशान है। चित्र इन्हीं चीजों को पाने के लिए परेशान है। दोनों की स्थितियां अलग थीं लेकिन वो अलग होते हुए भी एक-दूसरे की तकलीफ को समझते थे। हर पल एक-दूसरे को हिम्मत देते थे।

यह किरदार सच और सपने के बीच की छोटी सी खाली जगह में मिले थे। सुदीप और चित्र की ये अनोखी प्रेम कहानी 10 साल और 10 दिन में विभाजित है। प्रेम की सही परिभाषा को समझने के लिए लेखक दिव्यप्रकाश दुबे ने कई वन लाइनर का इस्तेमाल किया है जो उपन्यास को और भी सुंदर और पाठक को बांधे रखती है। कुछ खूबसूरत पंक्तियां इस प्रकार हैं-

1. हर आदमी में एक औरत और हर औरत में एक आदमी होता है। हर आदमी अपने अंदर की अधूरी औरत को जिंदगी भर बाहर ढूंढता रहता है लेकिन वो औरत बड़ी मुश्किल से मिलती है। वैसे ही हर औरत अपने अंदर का अधूरा आदमी ढूंढती रहती है लेकिन वो अधूरा आदमी बड़ी मुश्किल से मिलता है। कई बार वो अधूरा मिलता ही नहीं लेकिन अगर एक बार अधूरा हिस्सा मिल जाए तो आदमी मरकर नहीं खोता। तू ध्यान से देख वो कहीं नहीं गया, तेरे अंदर है। आधी तू आधा वो।

2. एक अधूरी उम्मीद ही तो है जिसके सहारे हम बूढ़े होकर भी बूढ़े नहीं होते। किसी बूढ़े आशिक ने मरने से ठीक पहले कहा था कि एक छटांक भर उम्मीद पर साली इतनी बड़ी दुनिया टिक सकती है तो मरने के बाद दूसरी दुनिया में उसकी उम्मीद बांधकर तो मर ही सकता हूं। बूढ़ों की उम्मीद भरी बातों को सुनना चाहिए।

3. हर अधूरी मुलाकात एक पूरी मुलाकात की उम्मीद लेकर आती है। हर पूरी मुलाकात अगली पूरी मुलाकात से पहले की अधूरी मुलाकात बनाकर रह जाती है।

4. किसी के साथ बैठकर चुप हो जाना और इस दुनिया को रत्ती भर भी बदलने की कोई भी कोशिश न करना ही तो प्यार है!

हमारी दो जिंदगियां होती हैं। एक जो हम हर दिन जीते हैं। दूसरी जो हम हर दिन जीना चाहते हैं। 'अक्टूबर जंक्शन' एक चमक दमक वाली जिंदगी के पीछे के अंधेरे को दिखाती है। एक प्रेम के धागे में पिरोई हुई प्रेम कहानी जिनके पास देह प्रेम के लिए तो अपने-अपने साथी थे लेकिन फिर भी वो एक दूसरे से बात करना पसंद करते थे। साल भर 10 अक्टूबर के आने का इंतजार करते हैं। उनकी उंगलियां न मिलने पर बेचैन होने लगती थीं। दोनों के रिश्ते की सबसे अच्छी बात शायद यही थी कि उन दोनों में से किसी एक को भी प्यार जैसा नहीं लगा था एक-दूसरे के साथ। वे बस एक-दूसरे के लिए छुट्टी की तरह से थे।

जीवन की कुछ गहरी और महीन बातों को व्यक्त करती यह किताब प्रेम का नया रूप सामने रखती है। इस किताब के माध्यम से रिश्ते की एक नई परिभाषा सीखने को मिली। किताब में कहीं भी क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। भाषा सरल एवं सहज है, जिसके कारण हर कोई किताब के साथ बंधता चला जाता है। इस दुनिया की आधे से ज्यादा परेशानियों की वजह एक ही है-जल्दबाजी। चित्र और सुदीप को न ही दोस्ती की जल्दी थी, न ही प्यार की। यह कहानी अगर केवल दोस्ती की होती तो वे ऐसे बार-बार मिलते ही नहीं। अगर कहानी प्यार की होती तो यह दुनिया की सबसे बोरिंग कहानी होती। जिन्हें प्रेम कहानियां और रिश्ते के नए रूप को पढ़ना हो और युवाओं में पसंद की जाने वाली हिंदी या यू कहें हिंग्लिश लुभाती हो वे ये किताब जरूर पढ़ें। जैसा दिव्य प्रकाश दुबे ने कहा है-'नदी और जिंदगी दोनों बहती हैं और दोनों सूखती रहती हैं।'

किताब : अक्टूबर जंक्शन
लेखक : दिव्य प्रकाश दुबे
प्रकाशक : हिन्द युग्म
मूल्य : 150 रुपए

मुस्कुराती औरतें

- **दीपशिखा**

मैंने देखी हैं
मुस्कुराती औरतें
हंसी में चीखें दबाती औरतें
अक्सर कपड़े धोते हुए
नदियों में ख्वाहिशें बहाती औरतें
साड़ियों के अंचरे संभाले हुए
कितने ही दाग छुपाती औरतें
मैंने देखी हैं
मुस्कुराती औरतें
दुख और पीड़ा के गम झेलते हुए
अपनों के लिए समाज से लड़ते हुए
खुद को धीमे-धीमे भुलाती औरतें
मैंने देखी हैं
मुस्कुराती औरतें।

चांद की चमक

- **गीतू**

तू चांद है, फिर से चमक
तू धूप है, फिर से दमक
तू छांव है दोपहर की
तेरा मन करे तो फिर बरस
तू पंक्ति है तुकबंदी वाली
तेरा मन करे तो तुक बदल
हर रोज की तू है सुबह
तू ही रात का उजाला बन
जो रोते हुए दिखे तुझे
तो हंसने का बहाना बन
गिरते हुए मानव का
मजबूत सा सहारा बन
तू चांद है, फिर से चमक
तू धूप है, फिर से दमक।

रामलाल आनंद महाविद्यालय
(दिल्ली विश्वविद्यालय)
बेनितो जुआरेज मार्ग, नई दिल्ली-110067